Digitized by eGangotri

प्रेमचन्द की नारी-केन्द्रित कहानियाँ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रेमचन्द की नारी-केन्द्रित कहानियाँ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दो शब्द

प्रेमचन्द हिन्दी के कालजयी कथाकार हैं। उनके अनुभव का परिसर बहुत व्यापक है। वे जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन बड़ी सहजता से करते हैं। उनकी कहानियों में अंकित भारतीय जन-जीवन सभ्यता-संस्कृति का अन्यतम रंग-लोक है। प्रेमचन्द की कहानियों पर बहुत-कुछ लिखा गया है। उस दिशा में **डॉ. रुचिरा** की शोध-कृति **'प्रेमचन्द की नारी-केन्द्रित कहानियाँ'** महत्त्वपूर्ण प्रयास है। आज स्त्री-विमर्श विशेष चर्चा में है। लेखिका ने प्रेमचन्द की कहानियों के माध्यम से नारी-जीवन से जुड़े अनेक प्रश्नों को रेखांकित किया है। प्रेमचन्द की अनेक कहानियों में प्रधान पात्र नारी है जो व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर विषम स्थितियों से जूझती हुई कर्म-पथ पर बढ़ती दिखायी देती है। रुचिरा जी ने उन नारियों की क्षमता को, विवशता को, सुख-दुःख भरी यात्रा को भलीभाँति समझा है और सही संदर्भ में उनकी रचनात्मक भूमिका का प्रकाशन किया है। पुरुप-प्रधान समाज में नारी-अस्मिता की पहचान कराने वाली यह कृति प्रेमचन्द को तथा उनकी नारी-विषयक अवधारणा को समझने में निश्चय ही सहायक होगी।

—डॉ. सुरेन्द्रनाथ सिंह
अध्यक्ष हिन्दी-विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली-110007

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भूमिका

डॉ. रुचिरा ढींगरा की प्रस्तुत पुस्तक **'प्रेमचन्द की नारी-केन्द्रित कहानियाँ'** हिन्दी कहानियों के शोधपरक अध्ययन के क्षेत्र में नवीन प्रयास है। प्रेमचन्द का कथा-साहित्य बहुआयामी होने के साथ-साथ अपने समय के अनेक अछूते सामाजिक सन्दर्भों का मार्मिक दस्तावेज है। अनेक समीक्षकों और पाठकों की दृष्टि प्रेमचन्द की कहानियों को और उनमें निहित समस्याओं को नए कोणों से देखने का उपक्रम करती है। डॉ. ढींगरा की दृष्टि उन कहानियों के माध्यम से प्रेमचन्द की सामाजिक चिन्ता को रेखांकित करती है जिनमें कहानियों के मूल पात्र के रूप में नारी-पात्र हैं। स्त्री-पुरुष के सामाजिक सम्बन्धों का उद्‌घाटन करने के लिए स्त्री-पात्र, चाहे वे गौण हों या प्रमुख, मुखर होते हैं। स्त्री की अस्मिता और मानव-अधिकारों का उद्‌घोष अपनी शक्तियों, दुर्बलताओं और सामाजिक/पारिवारिक आघातों के बीच संघर्ष की उद्दाम चेष्टाओं के द्वारा स्त्री-पात्र करते हुए दिखाई देते हैं। वस्तुतः कहानियों के सीमित फलक में भी छायावादी, यथार्थवादी, आदर्शवादी, मनोवैज्ञानिक आदि आधार स्त्री-पात्रों की विविधता और बहुलता का निदर्शन कराने में किस प्रकार समर्थ हैं—इनका विवेचन और विश्लेषण डॉ. रुचिरा ढींगरा ने अधिक व्यवस्थित और विवेकपूर्ण ढंग से किया है। प्रेमचन्द की कहानियों का अध्ययन स्त्री-मनोभूमि की उस सामाजिक संरचना को रेखांकित करता है जिसके कारण ही जैविक या शारीरिक भेद से अधिक स्त्री का 'स्त्रीत्व' पुरुष-प्रधान सामाजिक व्यवस्थाओं से परिभाषित होता है।

मैं समझता हूँ कि डॉ. ढींगरा की यह पुस्तक प्रेमचन्द के अध्येताओं के लिए अधिक उपयोगी होगी।

—डॉ. एस. एन. अय्यर
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110007

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्राक्कथन

हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचन्द का स्थान शीर्ष पर है। उपन्यास-सम्राट् के रूप में अधिक ख्याति प्राप्त करने पर भी उनकी कहानियाँ अपनी भावगत एवं शिल्पगत सहजता, सरसता और उत्कृष्टता के कारण कालजयी हैं। पत्र-पत्रिकाओं और संकलनों में बिखरी उनकी समस्त कहानियाँ मानसरोवर (आठ भाग) तथा गुप्त धन (दो भाग) में संकलित हैं। कुछ अप्राप्य कहानियों का उल्लेख भी शोध-ग्रन्थों में मिलता हैं।

प्रेमचन्द के बहुमुखी व्यक्तित्व का कोई भी आयाम शोधार्थियों की दृष्टि से छूटा नहीं है, अत: उन पर कुछ मौलिक लिखने का प्रयास दुस्साहस ही कहा जाएगा तथापि जैसे कोश में एक शब्द का अर्थ पाने के लिए किया गया प्रयत्न उसके बहुअर्थों को प्रकाशित कर उसके प्रयोग की अनन्त सम्भावनाओं को प्रकाशित करता जाता है, उसी प्रकार उनके साहित्य का अध्ययन हर बार एक नई दृष्टि, एक नई पकड़ और एक नई संभावना की ओर संकेत करता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों के कथ्य, चरित्र-शिल्प, परिप्रेक्ष्य-योजना तथा उद्देश्य को लेकर किए गए मौलिक लेखन एवं शोध-कार्यों की संख्या पर्याप्त है। इनमें लेखकों और अनुसंधाताओं की दृष्टि विषय की लक्ष्मण-रेखा के भीतर ही सिमटी रही है। यद्यपि प्रेमचन्द नारी समाज के प्रबल समर्थक, उसकी पीड़ा के समर्थ चितेरे, उसके समानाधिकार के पक्षपाती थे तथा उनकी सभी रचनाओं में नारी प्रमुख, गौण अथवा सांकेतिक रूप में विद्यमान रही है तथापि उनकी नारी-केन्द्रित कहानियों का पृथक् विवेचन नहीं हुआ है।

डॉ. सत्येन्द्र ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचन्द और उनकी कहानी कला' में उनकी स्त्री-शून्य कहानियों का एक वर्ग बनाया है, किन्तु वास्तव में ऐसा वर्ग पुरुष-शून्य कहानियों का ही उचित होगा क्योंकि उनकी शायद ही कोई कहानी नारी-शून्य होगी।

प्रेमचन्द की कृतियों में नारी-चित्रण को विषय बनाकर किए गए कार्यों में डॉ. गीता लाल का शोध-प्रबन्ध 'प्रेमचन्द का नारी-चित्रण', डॉ. भरतसिंह का शोध-प्रबन्ध 'प्रेमचन्द के नारी पात्र' तथा डॉ. ओम अवस्थी का 'प्रेमचन्द के नारी पात्र' उल्लेखनीय हैं। उपर्युक्त ग्रन्थों में प्रेमचन्द की सभी कहानियों को विवेचन का विषय बनाया गया है, केवल नारी-केन्द्रित कहानियों पर ही दृष्टि केन्द्रित नहीं रही है। डॉ. गीता लाल ने कहानियों के शिल्प पर भी विचार किया है तथा डॉ. भरतसिंह द्वारा प्रेमचन्द की नारियों का वर्गीकरण निश्चय ही वैज्ञानिक है। इनके अतिरिक्त प्रसाद, शरत्, विष्णुराम सखाराम खांडेकर के उपन्यासों में चित्रित नारी से प्रेमचन्द की नारी-योजना का तुलनात्मक विवेचन करने वाली कृतियाँ भी हैं। यथा; डॉ. पृथारानी डे की 'प्रेमचन्द और शरच्चन्द्र के कथा-साहित्य के नारी पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन',

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

डॉ. कमला देवी गुप्ता की 'प्रेमचन्द और शरच्चन्द्र के नारी पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन' तथा डॉ. प्रमिला गुप्ता की 'प्रेमचन्द और खांडेकर के नारी पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन'। 'प्रेमचन्द की परिवार-निष्ठा और उसका उनकी रचना-प्रक्रिया पर प्रभाव'—डॉ. रामसिंह, 'प्रेमचन्द के उपन्यास-साहित्य में सामाजिक समस्याएँ'—डॉ. सत्येन्द्र जी वर्मा, 'प्रेमचन्द के उपन्यासों में मानवीय सम्बन्ध'—डॉ. बच्चन पाठक तथा 'प्रेमचन्द के उपन्यासों में सामाजिक समस्याएँ'—डॉ. सुभद्रा पटेल में भी उनके नारी पात्रों का सन्दर्भित विवेचन मिलता है।

दिल्ली विश्वविद्यालय की एम. फिल. उपाधि के लिए स्वीकृत प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध में विषय और उसके विस्तार की सीमा के अनुरूप प्रेमचन्द की केवल नारी-केन्द्रित कहानियों को लिया गया है। उनकी अन्य कहानियों तथा उपन्यासों का उल्लेख आवश्यकतानुसार ही किया गया है। इस प्रबन्ध में कुल पाँच अध्याय हैं। **प्रथम अध्याय** उन आधारभूत एवं कारक तत्त्वों की गवेषणा से सम्बद्ध है जो प्रेमचन्द के नारी विषयक दृष्टिकोण के नियामक रहे हैं। इस सन्दर्भ में उनके जीवनानुभवों, साहित्यिक परिवेश, प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी साहित्य में चित्रित नारी की स्थिति, प्रेमचन्द के दृष्टिकोण पर युग-बोध का प्रभाव आदि को स्पष्ट किया गया है। **द्वितीय अध्याय** में नारी के प्रति प्रेमचन्द के विचारों का संक्षिप्त विवेचन करते हुए नारी के परम्परागत आदर्श रूप, प्रेम-भावना, सामाजिक सन्दर्भों में उसकी स्थिति, शोषिता एवं सेविका रूपों के प्रति उनके दृष्टिकोण को सुस्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

तृतीय अध्याय में प्रेमचन्द के प्रेम विषयक दृष्टिकोण के प्रकाश में उनकी नारी-केन्द्रित कहानियों में प्राप्त प्रेमिकाओं के आदर्श, अनादर्श रूपों का आकलन अभिप्रेत रहा है। **चतुर्थ अध्याय** नारी-पुरुष के सम्बन्ध-सूत्रों को प्रकाशित करता है। गार्हस्थ्य जीवन के परिप्रेक्ष्य में उसकी सुखद स्थितियों की विवेचना करते हुए प्रेमचन्द की आदर्श दाम्पत्य सुख भोगने वाली नारियों का चरित्र-विश्लेषण किया गया है। इसी प्रकार गार्हस्थ्य जीवन को विषम बनाने वाली स्थितियों और उनसे पीड़ित नारियों का चरित्र-विश्लेषण भी किया गया है। **पंचम अध्याय** में प्रेमचन्द की नारी-केन्द्रित कहानियों में उपलब्ध शोषिता, विधवा तथा वेश्या के जीवन, समस्याओं और प्रस्तावित निराकरणों का परिशीलन करने के साथ ही प्रगतिशीला नारी के विभिन्न रूपों—राष्ट्र-सेविका, प्रशासिका, शिक्षिका, चिकित्सिका, विधिवेत्ता के विश्लेषण का प्रयास किया गया है। **'उपसंहार'** के अन्तर्गत प्रेमचन्द की नारी सम्बन्धी संदृष्टि को समाकलित किया गया है। **परिशिष्ट** के अन्तर्गत आधार-ग्रंथों तथा सहायक ग्रंथों की सूची दी गई है।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध की समस्त विवेचनाओं एवं उपलब्धियों तक पहुँचने में मुझे डॉ. एस. नारायण अय्यर (पूर्व अध्यक्ष हिन्दी-विभाग) का जो सहयोग और मार्गदर्शन मिला उसके बिना इस शोध-प्रवन्ध की इस रूप में प्रस्तुति असंभव थी।

—रुचिरा ढींगरा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

नारी के प्रति प्रेमचन्द के दृष्टिकोण के आधारभूत एवं कारक तत्त्व 11

1. व्यक्तिगत जीवनानुभव—(अ) मातृ-स्नेह का अभाव, (आ) दाम्पत्य-सूत्र का तनाव, 2. साहित्यिक परिवेश—(अ) उर्दू-साहित्य और साहित्यकारों का प्रभाव, (आ) अंग्रेजी, फ्रांसीसी तथा रूसी साहित्य एवं साहित्यकारों का प्रभाव, (इ) बांग्ला साहित्य एवं साहित्यकारों का प्रभाव, 3. प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-साहित्य में चित्रित नारी की स्थिति, 4. युगीन परिवेश-बोध, 5. निष्कर्ष।

द्वितीय अध्याय

नारी के जीवन एवं व्यक्तित्व के प्रति प्रेमचन्द की संदृष्टि 23

1. नारी और पुरुष, 2. नारी का परम्परागत आदर्श रूप, 3. प्रेम : नारी की महत् शक्ति, 4. नारी के सामाजिक सन्दर्भ, 5. राष्ट्रसेविका नारी, 6. शोषिता नारी, 7 निष्कर्ष।

तृतीय अध्याय

प्रेमचन्द की नारी-केन्द्रित कहानियों में प्रेम 35

1. प्रेम का आदर्श रूप—(अ) एकनिष्ठता, (आ) त्याग, सेवा और कर्तव्य-निष्ठा, (इ) समाज-स्वीकृत मंगल रूप, 2. प्रेम का विकृत स्वरूप—(अ) स्वेच्छाचारिताजन्य विकृति, (आ) प्रतिशोध विकृति, (इ) कलुषित स्वार्थ-प्रेरित विकृति, 3. निष्कर्ष।

चतुर्थ अध्याय

नारी और पुरुष के सम्बन्ध-सूत्र : गार्हस्थ्य जीवन के परिप्रेक्ष्य में 54

1. गार्हस्थ्य जीवन की सुखद स्थितियाँ—(अ) पति-परमेश्वर का आदर्श, (आ) आदर्श प्रेम-सूत्र, (इ) प्रतिकूल परिस्थितियों में स्त्री का प्रेरणादायक रूप, (ई) सद्प्रेरक पत्नियाँ, 2. गार्हस्थ्य जीवन की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विषम परिस्थितियाँ—(अ) शोषिता एवं उपेक्षिता, (आ) कुटिल स्वभाव और आचरण, 3. माता—(अ) मातृत्व का आदर्श रूप (क) अप्रतिम वात्सल्य-भाव, (ख) त्याग और सहिष्णुता, (ग) सत्प्रेरिका। (आ) मातृत्व का अपुनीत पक्ष (क) मोहान्धता, (ख) धनलोलुपता, (ग) रूढ़िग्रस्त चेतना। 4. विमाता, (अ) मातृत्व से युक्त, (आ) कुटिल एवं निष्ठुर। 5. निष्कर्ष।

पंचम अध्याय

प्रेमचन्द की नारी-केन्द्रित कहानियों में नारी के अन्य रूप 88

1. शोषिता रूप—(अ) विधवा रूप, (क) वैधव्य को पूर्ण स्वीकृति देने वाली, (ख) वैधव्य को आंशिक स्वीकृति देने वाली, (ग) वैधव्य को पूर्ण अस्वीकृति देने वाली। (आ) वेश्या रूप (क) स्थिर वेश्या रूप का निर्वाह करने वाली, (ख) पुरुषों के अत्याचार के कारण पतित होने वाली, 2. प्रगतिशीला कर्मस्विनी रूप—(अ) राष्ट्रसेविका रूप, (क) सक्रिय सहयोगिनी, (ख) राष्ट्रभक्ति की प्रेरिकाएँ, (ग) त्यागी-बलिदानी, (घ) राष्ट्र भावना के उत्कर्ष से युक्त, (आ) प्रशासिका रूप—(क) गृह प्रशासिकाएँ, (ख) राजकीय प्रशासिकाएँ, (इ) शिक्षिका रूप, (ई) चिकित्सिका रूप, (उ) विधिवेत्ता रूप, 3. निष्कर्ष।

उपसंहार 118

परिशिष्ट : सन्दर्भ ग्रंथ-सूची 122

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रथम अध्याय

नारी के प्रति प्रेमचन्द के दृष्टिकोण के आधारभूत एवं कारक तत्त्व

मानव चाहे किसी भी जाति, धर्म, वर्ग अथवा कार्यक्षेत्र से सम्बद्ध हो, वह अपने पारिवारिक जीवन, वंशगत संस्कारों तथा सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश से निर्मित और नियमित होता है। वह अपने जीवनगत अनुभवों में नितान्त निजी और दूसरों से भिन्न कोटि और मात्रा का होता है। बदलती परिस्थितियाँ और तज्जन्य अनुभव उसकी जीवन-दृष्टि को सदैव परिवर्तित, परिमार्जित और परिपक्व करते चलते हैं। लेखक भी एक विशिष्ट मानसिकता द्वारा जगत् को देखता है। यह मानसिकता वह विशेष परिस्थिति, वंशधारा और परिपार्श्व से अर्जित करता है। इसलिए प्रेमचन्द की जीवन-दृष्टि के विभिन्न पक्षों और आयामों को उनके वैयक्तिक जीवनानुभवों, सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेशगत प्रेरक तथा बाधक तत्त्वों के अध्ययन के माध्यम से उचित परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रस्तुत अध्ययन में नारी के प्रति उनके दृष्टिकोण की पृष्ठभूमि को इन्हीं कारक तत्त्वों के आधार पर समझने का प्रयत्न किया गया है। इन कारक तत्त्वों को निम्नलिखित उपशीर्षकों के अन्तर्गत विवेचित किया गया है—

1. व्यक्तिगत जीवनानुभव
2. पूर्ववर्ती एवं समसामयिक साहित्य एवं साहित्यकार
3. युगीन परिवेश-बोध

यद्यपि प्रेमचन्द की मान्यताओं की अभिव्यक्ति उनके सम्पूर्ण साहित्य में हुई है तथापि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की विषय-सीमा के अनुसार हमने उनकी नारी-केन्द्रित कहानियों में व्यक्त मान्यताओं के विधायक तत्त्वों का ही तथ्यात्मक और आलोचनात्मक विश्लेषण किया है।

1. व्यक्तिगत जीवनानुभव

परिवार ही वह लघुतम सामाजिक इकाई है जिसमें शिशु अपना जीवन प्रारम्भ करता है। परिवार के विभिन्न सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध, परिवार की सांस्कृतिक,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सामाजिक और आर्थिक स्थितियाँ तथा उसमें घटित हर छोटी-बड़ी घटना प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से परिवार के प्रत्येक सदस्य को प्रभावित करती है। कभी-कभी तो बाह्य रूप से अत्यन्त नगण्य अथवा सामान्य प्रतीत होने वाली घटना भी उसके जीवन को अप्रत्याशित मोड़ देकर उसकी सम्पूर्ण जीवनधारा की दिशा ही बदल देती है। प्रेमचन्द के व्यक्तिगत जीवनानुभवों की नारी के प्रति उनके दृष्टिकोण के निर्धारण में मुख्य भूमिका रही है। यथा :

(अ) मातृ स्नेह का अभाव : प्रेमचन्द शैशव में ही अपनी माता के ममतामय संरक्षण से वंचित हो गए थे। अपनी सन्तान को पुनः ममत्वमय संरक्षण प्रदान करने की शुभेच्छा से पिता का दूसरा विवाह उनके लिए घोर यंत्रणा लेकर आया। निष्ठुर विमाता के संरक्षण में घुटन-भरे जीवन के अनुभव ने उनके बाल-मन को जिस असंतोष, कुंठा और क्षोभ से भर दिया था उसकी छाप उनके मन पर अन्त तक बनी रही। मातृ स्नेह के अभाव और विमाता की यंत्रणाओं में वे नारी के जिन दो रूपों (माता और विमाता) से परिचित हुए उनका संयुक्त रूप उनकी कहानियों में मिलता है। 'दूसरी शादी', 'विमाता', 'अलग्योझा' जैसी कहानियों में माता और विमाता के पारम्परिक रूपों की काल्पनिक प्रस्तुति नहीं है, उनकी भोगी हुई ज़िन्दगी का यथार्थ है।

(आ) दाम्पत्य सूत्र का तनाव : किशोरावस्था में ही प्रेमचन्द को एक कुरूप, रुग्णा, तेज-तर्रार स्त्री के साथ दाम्पत्य सूत्र में बाँध दिया गया था जिससे उनका क्षुब्ध होना स्वाभाविक था। पत्नी तथा विमाता के मध्य निरन्तर चलने वाले विग्रहों ने उन्हें पत्नी से इतना विमुख कर दिया कि उन्हें उसके मायके भेजकर पुनः न बुलाने का संकल्प लेना पड़ा। बाल-विधवा शिवरानी देवी से विवाह के पश्चात् उनके जीवन में किंचित् स्थिरता आई। शिवरानी देवी में उन्होंने आदर्श गृहिणी और नारी का रूप पाया।[1] यह कहा जा सकता है कि शिवरानी देवी में नारी के आदर्श रूप को देखने के पश्चात् ही प्रेमचन्द का नारी के प्रति एकांगी दृष्टिकोण बदला होगा। वे तटस्थ होकर उसके आदर्श तथा यथार्थ रूपों का अवलोकन करने के लिए उद्यत हुए होंगे। बाल-विवाह तथा अनमेल विवाह के विरोध तथा विधवा-विवाह के समर्थन के पीछे कदाचित् उनकी दृष्टियाँ यही रही होंगी।

---

1. "मेरे विवाहित जीवन में भी कोई रोमांस नहीं है। वह बिलकुल साधारण ढंग का है। मेरी पहली पत्नी 1904 में मर गई। वह एक अभागी स्त्री थी। वह देखने में तनिक भी अच्छी नहीं थी और मैं उससे सन्तुष्ट नहीं था; फिर भी जैसे सभी पति करते हैं, मैं बिना किसी प्रकार के शिकवे-शिकायत के उसका निर्वाह करता रहा। जब वह मर गई तो मैंने एक बाल-विधवा से शादी कर ली और मैं उसके साथ बहुत सुखी हूँ।...वह निर्भीक, साहसी, न झुकने वाली और ईमानदार स्त्री है, जो अपराध की ज़िम्मेदारी ले लेती है और काम में प्रवृत्त होने को विवश कर देती है।...मैं उसके साथ सुखी हूँ...।"
—प्रेमचन्द : एक विवेचन--इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ 155-156

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

2. साहित्यिक परिवेश

प्रेमचन्द शैशव से ही विद्या-व्यसनी थे। जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी उनके अध्ययन-लेखन में बाधक नहीं बन पाईं। उन्हें उर्दू, अंग्रेज़ी, बांग्ला तथा हिन्दी-साहित्य का प्रभूत ज्ञान था। इन सबका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव भी उनकी चिन्तन-धारा पर पड़ा।

(अ) उर्दू-साहित्य और साहित्यकारों का प्रभाव : कायस्थ परिवार में जन्मे प्रेमचन्द की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा मदरसों में उर्दू के माध्यम से हुई। उन्होंने अपना लेखन-कार्य भी उर्दू में ही प्रारम्भ किया था। 'सोज़े वतन' कहानी-संग्रह के ज़ब्त किए जाने के पश्चात् ही वे प्रेमचन्द के नाम से हिन्दी में आए। उन्होंने शेख सादी, अब्दुल हलीम शरर, मोहम्मद हादी रुसवा तथा रासिद उल खेरी के साहित्य का अध्ययन किया था। इनमें से शरर की विधवा-पुनर्विवाह, पर्दा-विरोध तथा स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी विचारधारा से वे विशेष प्रभावित हुए। सरशार के साहित्य में भी इन्हें उपर्युक्त विचारों का ही समर्थन मिला जिससे इनके विचारों में और दृढ़ता आई। राशिद उल खेरी के सदृश ही इन्होंने भी यह माना कि नारी का आदर्श पति-परायण होना और अपने सतीत्व की रक्षा करना है।

(आ) अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी तथा रूसी साहित्य एवं साहित्यकारों का प्रभाव : प्रेमचन्द ने अंग्रेज़ी उपन्यास-साहित्य को भी प्रचुर परिमाण में पढ़ा था। डिकेन्स, थैकरे, हार्डी तथा गार्ल्सवर्दी का साहित्य इन्हें विशेष प्रिय था। फ्रांसीसी उपन्यासकारों विक्टर ह्यूगो, रोमाँ रोला, अनातोले फ्रांस, तथा रूसी साहित्यकारों टॉलस्टाय और गोर्की को भी इन्होंने अंग्रेज़ी माध्यम से पढ़ा था। उनकी चरित्र-योजना पर इनका स्पष्ट प्रभाव रहा है। डॉ. महामुनि सिंह के अनुसार, ''प्रेमचन्द ने अपने पात्रों का चयन जीवन के हर क्षेत्र से किया। उनके पात्र भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनमें यह प्रवृत्ति पाश्चात्य प्रभाव के परिणामस्वरूप ही आई। इस रूप में वह डिकेन्स, थैकरे, टॉल्स्टाय और गोर्की आदि श्रेष्ठ उपन्यासकारों की परम्परा में आते हैं।''[1] किन्तु प्रेमचन्द ने इनका अंधानुकरण नहीं किया। थैकरे की भाँति वे अपने नारी पात्रों को आदर्श दाम्पत्य के लिए सर्वस्व समर्पित करते नहीं दिखाते; क्योंकि वे भारतीय आदर्शों के आग्रही होते हुए भी उन्हें अपनी जीवन-तालिका नहीं बनाते। टॉलस्टाय की प्रेम विषयक धारणा भी उन्हें अपने अनुकूल लगी तथा बॉल्जाक की भाँति इन्होंने तद्युगीन परिवेश का अंकन भी किया, किन्तु सदैव भारतीय परिप्रेक्ष्य की

---

1. 'प्रेमचन्द : साहित्य सन्दर्भ' (सं. डॉ. लक्ष्मीकांत पांडेय) में संकलित 'प्रेमचन्द और पाश्चात्य उपन्यास' लेख, पृष्ठ 544

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लक्ष्मण-रेखा के भीतर रहते हुए ही।

(इ) बांग्ला-साहित्य एवं साहित्यकारों का प्रभाव : बांग्ला-साहित्य का परिचय भी प्रेमचन्द ने अंग्रेज़ी और हिन्दी के माध्यम से प्राप्त किया था। उनके 'सेवासदन' और 'बड़े घर की बेटी' का प्रकाशन-काल रवीन्द्र की चरम ख्याति का वह काल था जब वे कहानी-जगत् में अपनी सम्पूर्ण उज्ज्वलता के साथ दीप्तिमान् थे। उनसे पूर्व भी तत्त्वबोधिनी युग की स्थूल आदर्शवादी कहानियाँ, त्रैलोक्यनाथ की हास्य-व्यंग्यात्मक कहानियाँ तथा बंकिम चट्टोपाध्याय की रोमांटिक कहानियाँ बांग्ला-कहानी की पृष्ठभूमि निर्मित कर चुकी थीं। बंकिम ने 'देवी चौधुरानी', 'आनन्द मठ', 'कपाल कुण्डला' में नारी के उदात्त रूप का अंकन किया। रवीन्द्र ने 'कुमुदिनी' तथा 'घरे बाहिरे' में नारी को वात्सल्य, त्याग, सेवा और प्रेम की अधिष्ठात्री मानने के साथ ही उसमें निहित विद्रोह-भाव को भी प्रकाशित किया। शरत् ने 'चरित्रहीन' में वेश्याओं के प्रति पूर्ण सहानुभूति प्रदर्शित की किन्तु उनका दृष्टिकोण भावात्मक अधिक था, अत: वे अपने द्वारा उठायी गई समस्याओं का कोई ठोस उपचार नहीं सुझा पाये।

प्रेमचन्द उक्त तीनों ही साहित्यकारों की सीमाओं से अवगत थे। अत: उन्होंने उनके प्रेरणास्पद तत्त्वों को ग्रहण करते हुए भी अपना अलग दृष्टिकोण बनाया। बंकिम की भाँति वे अपनी चरित नायिकाओं को मूक पशुवत् यंत्रणा सहते नहीं देखते रहते, बल्कि उनकी मुक्ति के लिए आकुल हो उठते हैं। रवीन्द्रनाथ की कहानियों के उस यथार्थ पक्ष ने उन्हें आकृष्ट किया जो शिवत्व से युक्त था। किन्तु उन्होंने विशिष्ट परिस्थितियों में नारी को घर से बाहर निकलकर स्वावलम्बी बनने के लिए भी प्रोत्साहित किया। इसी प्रकार शरत् की भाँति केवल विधवा-समस्या के विश्लेषण से तुष्ट न रहकर उन्होंने उनके प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाने, यथोचित संरक्षण-संस्थाओं की स्थापना करने का भी सुझाव दिया। यही नहीं, उनसे भी आगे बढ़कर 'दो कब्रें' तथा 'आगा-पीछा' कहानियों में वेश्या-संतानों को मिलने वाले तिरस्कार और उपेक्षा का भी अंकन किया। डॉ. इन्द्रनाथ मदान की तद्विषयक स्थापना द्रष्टव्य है—''यदि प्रेमचन्द की शरच्चन्द्र से तुलना की जाए तो सामाजिक समस्याओं के विश्लेषण में शरच्चन्द्र अधिक संयत जान पड़ेंगे। विधवा का जीवन भी उनकी कला का मूल है; लेकिन उनमें समाज-सुधार के लिए उत्साह नहीं है। उनके उपन्यासों में जो विधवाओं के बड़े-बड़े चित्र हैं वे अपने रंगों के लिए प्रसिद्ध हैं। वे सबसे अधिक रुचि चरित्र-चित्रण में रखते हैं। प्रेमचन्द का सम्बन्ध विशेष रूप से सामाजिक समस्या में रहता है।''[1] यद्यपि कहीं-कहीं पाठक को ऐसा प्रतीत होता है कि उनके द्वारा किया गया समस्या का विश्लेषण और उसके लिए सुझाया गया उपचार दोनों ही उथले हैं तथा

1. 'प्रेमचन्द : चिन्तन और कला' पृ. 10

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उनके द्वारा की गई आकस्मिक घटनाओं की योजना एवं चरित्रों का हृदय-परिवर्तन एक पूर्व निश्चित आदर्श के अनुरूप है, तथापि ऐसा उनकी प्रारम्भिक कहानियों में ही मिलता है—यथा 'बड़े घर की बेटी' तथा 'बूढ़ी काकी' में। यह आदर्शवाद उस समय की माँग थी। अनुभव के साथ जैसे-जैसे वे सामाजिक दुरवस्था से परिचित होते गए उनकी कहानियाँ भी ठोस धरातल पर अवस्थित होने लगीं। डॉ. इन्दुमती ओझा की यह स्थापना उचित ही है कि "संवेदनशील लेखक जहाँ भी मानवता पर अन्याय-अत्याचार देखता है, वहीं वह मर्माहत हो जाता है, चाहे वह बांग्ला का लेखक हो, या हिन्दी का। इसीलिए बांग्ला के अनेक लेखकों की कहानियों की विषय-वस्तु और थीम प्रेमचन्द की कहानियों से मेल खाती है। लेकिन इतना निश्चित है कि प्रेमचन्द में हिन्दी की निजी विशिष्टताएँ हैं। अत: बांग्ला कहानीकारों से साम्य रखते हुए भी वे सबसे एक साथ ही अलग भी हो जाते हैं। अनेकता में एकता के सिद्धान्त के साक्षी बनते हुए सबसे अलग दिखते हैं।"[1] प्रेमचन्द की कहानियाँ यथार्थ के धरातल पर अवस्थित होने के कारण अधिक ग्राह्य रही हैं। पाठक उनकी अनुभूतियों को अधिक हृदयंगम कर पाते हैं क्योंकि वे उसी धरातल की हैं जिसमें हम सब जी रहे हैं।

3. प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-साहित्य में चित्रित नारी की स्थिति

यद्यपि प्रेमचन्द ने उर्दू से हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश किया किन्तु उन्होंने हिन्दी-साहित्य का भी गहन अध्ययन किया था जिसका प्रभाव उनके मानस पर पड़ा। प्राचीन साहित्य में नारी के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण व्यक्त किया गया है। मोक्ष-प्राप्ति के लिए कन्यादान अपरिहार्य था, अत: कन्या का जन्म सुखद माना जाता था। उसकी शिक्षा-दीक्षा और उपनयन आदि संस्कारों की भी समुचित व्यवस्था होती थी। गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, घोषा, श्रद्धा, अपाला आदि सूक्त ऋषिकाएँ अपनी तर्क-शक्ति और मेधा से पुरुषों को भी चमत्कृत करने वाली नारियाँ थीं। स्वयंवर की प्रथा होने से नारी वर-चयन में स्वतंत्र थी। विवाह-सम्बन्ध अविच्छेद्य माने जाते थे। रुग्णा, वंध्या, कर्कशा अथवा चरित्रहीन स्त्रियों को भी केवल धार्मिक कृत्यों, शारीरिक सम्बन्धों तथा लौकिक व्यवहार से वंचित कर दंडित किया जा सकता था। दहेज केवल विवाहोत्सव पर दिए गए उपहार के रूप में प्रचलित था तथा नारी अवध्य होती थी। शाक्त धर्म में भी नारी को मातृशक्ति के रूप में सम्मानित किया गया किन्तु उत्तर-वैदिक काल में नारी के प्रति हीन भावना पनपने लगी थी। उसे शूद्रवत् मानकर धार्मिक कृत्यों, शिक्षा और सम्पत्ति से वंचित कर पुरुषों के अधीन कर दिया गया। विधवाओं को कठोर

---

1. प्रेमचन्द : साहित्य सन्दर्भ (सं. लक्ष्मीकांत पांडेय) में संकलित लेख 'प्रेमचन्द और बांग्ला कथा-साहित्य', इन्दुमती ओझा, पृष्ठ 447

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ब्रह्मचर्य का निर्वाह करते हुए विरूप बनकर, लांछित और तिरस्कृत जीवन जीना पड़ता था।

आदिकालीन साहित्य में नारी पुरुष की भोग्या के रूप में चित्रित की गई। वीरगाथाओं में कन्यापहरण को पौरुष-प्रदर्शन कहा गया है। जैन, बौद्ध धर्मों ने उसे पंचमकार में एक मान उसके प्रति विरक्ति दिखलाई तो सिद्ध, नाथ और वाममार्गी धर्मों में विलासमूलक दृष्टि प्रधान रही। मध्ययुगीन साहित्य में पर्दे में कैद, बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, बहुविवाह, कन्या-हत्या जैसी जघन्य प्रथाओं के दुष्परिणामों को भोगती नारी का अंकन मिलता है। भक्ति, दर्शन और योग की चर्चा करने वाले धर्माचार्यों ने उसे 'अघ की खान', 'अधम ते अधम', माया और छाया बताकर पुरुष को उससे यथासंभव विरक्त रहने की सम्मति दी। कबीर, दादू, पलटू आदि सन्त कवियों की वाणियों में नारी का यही रूप मिलता है। तुलसी, सूर आदि सगुण भक्त कवियों तथा प्रेममार्गी सूफ़ी कवियों का दृष्टिकोण भी एकांगी रहा। उन्हें नारी का विशिष्ट अलौकिक रूप (सीता, राधा, नागमती) ही काम्य रहा। यद्यपि आदिकालीन साहित्य की अपेक्षा भक्तियुगीन साहित्य में उपलब्ध नारी-चित्र अपेक्षाकृत संयत हैं तथापि उन्हें पूर्णत: स्वस्थ नहीं माना जा सकता।

रीतिकाल में नारीत्व जारत्व का शिकार बना। श्रृंगारिकता और कलात्मकता का प्राधान्य होने से कवियों की दृष्टि नारी की देहयष्टि तक सीमित रही। नायिका के नख-शिख-सौन्दर्य, हाव-भाव, कटाक्ष, मान तथा प्रेमोन्मत्त नायक की उत्तेजक काम-क्रीड़ाओं के कुत्सित वर्णनों द्वारा आश्रयदाताओं की विलास-तृप्ति में प्राण-पण से जुटे कवियों को उसका आत्मिक सौन्दर्य देखने का अवकाश ही न था। वृन्द, गिरिधर आदि का नीतिपरक काव्य भी अपनी परिमितता और युगीन वृत्ति की प्रतिकूलता के कारण लोक-रुचि को परिष्कृत करने में असमर्थ रहा।

आधुनिक काल का पूर्वार्द्ध वैचारिक एवं सांस्कृतिक धरातल पर दो परस्पर विरोधी संस्कृतियों—पाश्चात्य एवं भारतीय—के संघात को रेखांकित करता है। वैज्ञानिक प्रगति, आंग्ल शिक्षा के प्रचार-प्रसार और विभिन्न संस्कृतियों के सम्पर्क से भाव-बोध और चेतना ने परम्परागत जीवन मानों, मूल्यों और मानदण्डों को बदलकर एक नई, अपेक्षाकृत उदार और व्यापक जीवन-दृष्टि प्रदान की। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक से बीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध तक के पद्य एवं गद्य-साहित्य में इस नूतनता का आभास मिलने लगा था किन्तु उसका प्रवाह तीव्र और प्रभावी नहीं था। नवीन विचारों से अनुप्राणित साहित्यकारों ने नारी के प्रति सहानुभूति व्यक्त की। वे नारी-जागरण के लिए कृतसंकल्प भी थे तो पाश्चात्य सभ्यता का हिमायती साहित्यकार-वर्ग हिन्दू समाज और उसकी दूषित समाज-व्यवस्था पर कुठाराघात कर उसे बदल डालने के लिए कटिबद्ध था। ईसाई मिशनरी भी पाश्चात्य सभ्यता के प्रचार-प्रसार में लगे थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रीतिकालीन प्रभाव से भी अभी तक पूर्ण मुक्ति नहीं मिल पाई थी। उक्त प्रभावों में जकड़े साहित्यकार न तो स्वयं को प्राचीन से एकदम विलग कर पा रहे थे और न नवीन से जुड़ने का मनोबल ही जुटा पा रहे थे।

पूर्व-प्रेमचन्द युग में नीतिप्रधान सामाजिक, प्रेमप्रधान, तिलिस्मी, ऐय्यारी और जासूसी, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित रोमांचकारी उपन्यासों का सृजन हो रहा था। अंग्रेज़ी और बांग्ला उपन्यास-साहित्य भी अनूदित किया जा रहा था। हिन्दी-कहानी-साहित्य अत्यन्त अपरिपक्व अवस्था में था। तत्त्वबोधिनी युग की स्थूल आदर्शवादी कहानियाँ, त्रैलोक्यनाथ की हास्य व्यंजनात्मक कहानियाँ, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय की रोमांटिक कहानियाँ बांग्ला कहानी की ठोस पृष्ठभूमि बना चुकी थीं। 'रानी केतकी की कहानी', 'इन्दुमती', 'भाग्यचक्र', 'कौतुकमय मिलन' तथा 'मेरी चम्पा' कहानियों में नारी के विभिन्न रूप अंकित मिलते हैं।

सनातनधर्मी सामाजिक उपन्यासकारों ने ऐतिहासिक, पौराणिक, उपदेशात्मक इतिवृत्तों के माध्यम से, दूषित समस्याओं में जकड़ी, अशिक्षित नारी का अंकन किया। जनसामान्य के चित्रण के अभ्यस्त न होने से इन्होंने नारी के आदर्श रूप को अपनाया। इनका उद्देश्य नारी को पाश्चात्य शिक्षा से विरक्त कर, भारतीय संस्कृति के परम्परागत ढाँचे में ढालना था, अत: इन्होंने उसके तरुणी और परिणीता रूप के आदर्श चित्र अंकित किए। ये नारी-स्वतंत्रता, उच्च शिक्षा और विधवा-पुनर्विवाह के विरोधी तथा पर्दा और वेश्या-प्रथा के समर्थक थे। नारी की समस्याओं से अवगत होते हुए भी इन लेखकों ने उनका विवेचन धर्म के सन्दर्भ में किया तथा पुराणपंथियों के रुष्ट होने के भय से कोई ठोस निदान भी प्रस्तुत नहीं किया। लज्जाराम शर्मा का 'आदर्श हिन्दू', 'आदर्श दम्पत्ति', 'हिन्दू गृहस्थ', चण्डिकाप्रसाद मिश्र का 'सुहागिनी', पारसनाथ मिश्र का 'मँझली बहू', प्रियम्बदा देवी का 'कलियुगी परिवार का एक दृश्य' तथा ईश्वरीप्रसाद शर्मा का 'वामा शिक्षक' ऐसी ही कृतियाँ हैं।

परम्परागत संस्कारों, अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों में अभिरुचि तथा यथार्थवादी दृष्टि के अभाव ने कतिपय लेखकों को नारी के विलासी, कामुक रूप को उरेहने की प्रेरणा दी। लज्जाराम मेहता ने 'धूर्त रसिकलाल', 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' में, जगमोहन सिंह ने 'श्यामा-स्वप्न' में तथा रत्नाकर प्लीडर ने 'नूतन चरित' में सुन्दर किन्तु असन्तुष्ट कामवासना-जन्य कुंठा से ग्रस्त नारी-चरित्रों की सृष्टि की। इसमें किसी प्रकार का वैविध्य नहीं मिलता। श्रीनिवासदास ने 'परीक्षा गुरु' में तथा श्री देवकीनंदन खत्री ने 'काजर की कोठरी' में वेश्याओं को पात्र-रूप में नियोजित किया। ब्रजनन्दन सहाय ने 'राधाकान्त' तथा हरिऔध ने 'अधखिला फूल' में गुप्त सामान्याओं का वर्णन तो किया, किन्तु पुरुष वर्ग को उनसे यथाशक्ति विरक्त रहने की सम्मति दी।

आर्यसमाज से प्रभावित उपन्यासकारों ने नारी के प्रगतिशील रूप का अंकन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

किया। तिलिस्मी-ऐय्यारी उपन्यासों का आधार फारसी की 'तिलिस्म होशरुबा' जैसी कथाएँ थीं, अत: उनमें छल-फ़रेब एवं षड्यंत्र में लिप्त ऐय्यार नारियों का अंकन मिलता है। इसी प्रकार अंग्रेज़ी उपन्यासकारों के प्रभावस्वरूप जासूसी उपन्यासों में नारी के आदर्श-अनादर्श दोनों रूप अंकित हुए। गोपालराम गहमरी के 'ठन-ठन गोपाल' की हरदेवी तथा रेशमी, 'गुप्तचर' की सुलोचना तथा लीला देवियाँ हैं तो 'झंडा डाकू' की उर्मिला और 'अद्भुत खून' की लूसी दानवी। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि पूर्वप्रेमचन्दयुगीन हिन्दी-साहित्य में चित्रित नारी-चरित्र एकांगी और अव्यापक हैं। उनमें सजीवता और प्रेरक शक्ति का अभाव है क्योंकि नारी सम्बन्धी समस्याओं का यथोचित विवेचन-विश्लेषण नहीं हुआ। पुरुष की प्रधानता होने से नारी के अबला रूप को उभारा गया जिसे किसी भी दृष्टि से स्वस्थ एवं संतुलित दृष्टिकोण नहीं कहा जा सकता।

प्रेमचन्द सुलझे हुए आधुनिक विचारों के व्यक्ति थे, अत: उन्होंने न तो पुरातन को ही स्वीकारा और न सारे आधुनिक को। इसके विपरीत उन्होंने प्राचीन-नवीन दोनों के ग्राह्य आदर्शों के आधार पर अपने नारी-चरित्रों की सृष्टि की। उनकी नारीत्व-कल्पना आधुनिक विचारधारा से प्रभावित, मार्क्सवाद से समंजित होकर भी भारतीय संस्कृति तक सीमित रही है। उनकी नारी भारतीय संस्कृति की प्राणमयी प्रतिमा है। सेवा, पवित्रता, भक्ति, उदारता, सहिष्णुता तथा नि:स्वार्थ उत्सर्ग-भावना के उच्चतम आदर्शों की स्वामिनी के रूप में वह पुरुष से कहीं श्रेष्ठ है। मध्ययुगीन नारी की दुर्दशा ने उन्हें क्षुब्ध किया और उन्होंने उसके पतन के लिए पुरुषों और दूषित सामाजिक व्यवस्था को कारण माना। हिन्दू धर्म की निन्दा और इस्लाम धर्म की प्रशंसा भी उन्होंने इसी सन्दर्भ में की। अपने पूर्ववर्ती कहानीकारों और उपन्यास-लेखकों की नारीविषयक धारणा भी उन्हें स्वीकार्य नहीं थी। उनके द्वारा चित्रित नारी-रूप की प्रतिक्रिया प्रेमचन्द की कहानियों में मिलती है। उन्होंने नारी-पुरुष को विभेदक दृष्टि से न देखकर नारी को भी शिक्षा प्राप्त कर स्वावलम्बी बनने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया। उसे पुरुषों के समान वैवाहिक स्वतंत्रता और सम्पत्ति का अधिकार दिलाने की वकालत की किन्तु इसके साथ ही आधुनिक पथभ्रष्ट नारियों के यथार्थ चित्र अंकित कर उनकी कृत्रिमता, मिथ्या अहं, आचरणगत असंगति और विकृति, कामकुण्ठा, वैभव-विलास की लिप्सा और अन्तत: पतन को उद्घाटित किया है तथा युगीन नारी को सचेत किया है। उनकी प्रारंभिक कहानियाँ (बड़े घर की बेटी, राजा हरदौल) जहाँ विशुद्ध आदर्शवादी हैं वहीं बाद की कहानियाँ क्रमश: आदर्शोन्मुख यथार्थवादी (बूढ़ी काकी) तथा यथार्थवादी (पूस की रात, ठाकुर का कुआँ, बेटों वाली विधवा) होती गई हैं। उनकी नारी विषयक मान्यताओं का विवेचन पृथक् अध्याय में किया जाएगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

4. युगीन परिवेश-बोध

प्रेमचन्द जागरूक समाज-द्रष्टा थे। अपनी तीव्र एवं प्रखर सामाजिक चेतना के कारण वे जहाँ अपने चतुर्दिक् वातावरण से प्रभावित हुए, वहीं एक समर्थ सर्जक के रूप में उन्होंने उसे प्रभावित भी किया। तद्‌युगीन राजनीतिक स्थिति ने उनमें राष्ट्र-प्रेम का स्फुरण किया, किन्तु समाज में व्याप्त विभिन्न कुरीतियों ने उन्हें क्षुब्ध किया और वे उनके उन्मूलन के लिए कृतसंकल्प हुए।

प्रेमचन्दयुगीन समाज में भी नारी को उचित सम्मान नहीं मिल पाया था। कन्या-जन्म को शुभ नहीं माना जाता था क्योंकि उसके उत्पन्न होते ही उसके दहेज, विवाह आदि की चिन्ता अभिभावकों को त्रस्त करने लगती थी। कन्याओं की शिक्षा के प्रति भी विशेष रुचि जाग्रत नहीं हुई थी तथा अधिक शिक्षा को—विशेषकर पश्चिमी शिक्षा को—उनके लिए हानिकर माना जाता था। पर्दे की प्रथा थी। अत: नारी का वास्तविक कार्यक्षेत्र घर तक सीमित था। स्वच्छंद प्रेम को निंदनीय माना जाता था। विवाह में वैदिक रीतियाँ प्रचलित थीं। बाल-विवाह और दहेज-प्रथा के कारण अनमेल विवाह तथा बहुविवाह भी प्रचलित थे। तलाक की प्रथा नहीं थी, किन्तु अनौपचारिक रूप से स्त्रियों को त्यागने के दृष्टांत मिल जाते थे। स्वयं प्रेमचन्द ने अपनी पहली पत्नी को मायके भेजकर फिर कभी नहीं बुलाया था। विधवाओं की स्थिति दयनीय थी। संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली के कारण वे पति की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी नहीं होती थीं। पिता की सम्पत्ति पर भी उनका अधिकार नहीं होता था। अत: उन्हें बड़ा ही यंत्रणापूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ता था। सती-प्रथा भी प्रचलित थी, किन्तु निरन्तर कम होती जा रही थी। विधवा-पुनर्विवाह वर्जित थे जबकि विधुर पुरुष को पुनर्विवाह की छूट थी। वेश्यावृत्ति भी प्रचलित थी।

ग्रामीण तथा शहरी स्त्रियों के जीवन में भी अन्तर था। इसी प्रकार उच्च, मध्य और निम्न वर्ग की नारियों की स्थिति भी भिन्न थी। नगरों में शिक्षा के प्रचार-प्रसार से नारी वर्ग में स्वाधिकारों के प्रति जागरूकता आ रही थी। वह समाज में अपनी स्वतंत्र और अनिवार्य अस्मिता के साथ प्रतिष्ठित थी, किन्तु ग्रामीण नारियाँ अशिक्षित होने के कारण अभी भी बहुत पीछे थीं। ज़मींदार, साहूकार, दूकानदार आदि की पत्नियों को घर में रहते हुए ही शिक्षा, भोजन, वस्त्र आदि की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। इसके विपरीत सामान्य कृषकों, चमारों आदि की स्त्रियों का जीवन संघर्षरत होता था। पतिपरायणा और पुत्रवत्सला होने पर भी अधिक संतानोत्पत्ति और घोर परिश्रम से इनका शरीर जर्जर हो जाता था। इनमें पुनर्विवाह, विधवा-विवाह बहुविवाह भी प्रचलित थे। सर्वाधिक शोषित मध्यवर्गीय नारी थी। सामाजिक रूढ़ियों और थोथी मर्यादाओं को ढोती हुई ये नारकीय जीवन जी रही थीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध से ही भारत में नारी की सामाजिक स्थिति में सुधार सम्बन्धी प्रयास प्रारंभ हो गए थे। राजा राममोहन राय ने सती-प्रथा-उन्मूलन के लिए घोर संघर्ष किया। उन्होंने इसके मूल कारणों में बालविवाह, बहुविवाह तथा नारी की आर्थिक परावलंबिता को मुख्य माना। उनके प्रयासों से सन् 1829 में पारित विधेयक ने इस जघन्य प्रथा को समाप्त कर दिया। श्री डी. के. कर्वे ने स्वयं एक विधवा से विवाह किया तथा सन् 1816 में पूना में विधवा-आश्रम की स्थापना की। उनसे तथा अमरीकी समाज-सुधारक श्री सुप्तान एन्थोनी से प्रेरित एवं प्रभावित होकर श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने अपनी पुस्तक 'विडो रिमैरिज' में विधवा-पुनर्विवाह की वैधता सिद्ध की जिसके फलस्वरूप सन् 1856 में तत्सम्बन्धी विधेयक पारित हुआ। उन्होंने व्यावहारिक जीवन में भी अपने सिद्धान्तों को चरितार्थ किया। महादेव गोविन्द रानाडे ने उनके कार्य को आगे बढ़ाया। सन् 1869 में विवाह-सम्बन्ध-विच्छेद अधिकार मिलने से नारी की स्थिति अपेक्षाकृत सुदृढ़ हुई। श्री दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज के माध्यम से 'वेदों की ओर लौटो' का जो नारा बुलन्द किया उससे सन् 1872 में अन्तर्जातीय विवाह अधिनियम तथा सन् 1929 में बालविवाह-निरोधक कानून पारित हुए। उन्होंने नारी के लिए संगीत, पाककला आदि की शिक्षा को आवश्यक माना, विधवाओं के लिए आश्रमों की स्थापना की तथा उन्हें शिक्षित कर आत्मनिर्भर बनाने की व्यवस्था की। स्वामी विवेकानन्द ने नारी को माता और देवी काली के रूप में देखा। स्त्रियों की दशा में सुधार बिना वे संसार में समृद्धि का होना असंभव मानते थे। उन्होंने मातृत्व, त्याग, पातिव्रत, सहिष्णुता, सतीत्व आदि गुणों के कारण भारतीय स्त्रियों को विदेशी स्त्रियों से श्रेष्ठ माना। नारी को पशुपालन, बागवानी तथा जीवनोपयोगी शिक्षा दिया जाना वे आवश्यक समझते थे।[1]

नारी को आर्थिक स्वावलम्बन उपलब्ध कराने के लिए भी विधान बनाए गए। मद्रास (1930), उत्तर प्रदेश (1931), बंगाल (1931), जम्मू कश्मीर (1934) तथा पंजाब (1935) में वेश्यावृत्ति को रोकने के लिए वैधानिक प्रयास किए गए। महिला राष्ट्रीय परिषद, क्रिस्तीन महिला-संस्था, अखिल भारतीय महिला परिषद्, कस्तूरबा गांधी मेमोरियल ट्रस्ट, नारी-शिक्षा समिति आदि ने नारियों में स्वावलम्बन और जागृति लाने का कार्य किया। गांधीजी नारी की पतनावस्था पर अत्यन्त क्षुब्ध थे। उन्होंने बालविवाह, देवदासी और वेश्या-प्रथाओं का खंडन किया तथा नारी और पुरुष के समानाधिकारों की चर्चा की। उन्होंने नारी के लिए घरेलू शिक्षा—कताई, बुनाई आदि—को महत्त्वपूर्ण बताया और उसे राजनीति में सक्रिय भाग लेने के लिए भी आमन्त्रित किया। श्रीमती एनी बेसेन्ट तथा श्रीमती सरोजिनी नायडू के सद्प्रयासों से नारी को

1. देखिए : Thoughts of Power, Swami Vivekananda.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मताधिकार भी मिला। नारी-शिक्षा के लिए विभिन्न विद्यालयों की भी स्थापना हुई।

प्रेमचन्द अपने युग की नारी की शोषितावस्था से क्षुब्ध थे। उन्होंने नारी की समस्याओं के मूल में जाकर उनके कारणों की खोज और उनके उन्मूलन का प्रयास किया। अपने साहित्य में उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों, वय, जाति, धर्म की स्त्रियों का चित्रण किया। उनका प्रत्येक नारी पात्र किसी-न-किसी समस्या से सम्बद्ध रहता है। डॉ. रणवीर रांग्रा के अनुसार—"महान् कलाकार प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में शोषित नारी और अभागिन नारी का ही चित्रण इसलिए किया है कि उन्होंने देखा कि नारी जो समाज की एक महत्त्वपूर्ण इकाई अर्थात् परिवार की नींव है, जिस पर गृहस्थ और समाज के समस्त सदाचार टिके हुए हैं, उसे कहीं भी उसका उचित स्थान नहीं दिया जा रहा। उस पर दुनिया-भर के कर्तव्यों का बोझ लाद दिया जाता है, पर अधिकार उसे एक भी नहीं मिलता। वह सबका पोषण करती है—अपना सर्वस्व निछावर करके भी—पर उससे पोषित होकर भी सब उसका शोषण करने पर तुले रहते हैं।"[1]

तद्‌युगीन सुधारवादी संस्थाओं में से प्रेमचन्द पर आर्यसमाज का प्रभूत प्रभाव रहा। बालविवाह, अनमेल विवाह और बहुविवाह का निषेध तथा विधवा विवाह का समर्थन उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से किया। 'सुभागी', 'धिक्कार', 'अलग्योझा' कहानियों में उन्होंने विधवाओं को चरित नायिकाओं के रूप में प्रतिष्ठित कर अपने मत को व्यक्त किया है। रामकृष्ण मिशन के संस्थापक विवेकानन्द का प्रभाव भी उनके नारी विषयक दृष्टिकोण पर पड़ा। उन्होंने नारी में मातृत्व को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना[2] तथा रूप की अपेक्षा उसमें गुणों की सन्निहिति पर बल दिया।

प्रेमचन्द पर गांधीजी का प्रभाव सर्वाधिक था। उन्हीं के प्रभावस्वरूप उन्होंने नारी के प्रगतिशील रूप का अंकन किया तथा उसे सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्र में पुरुषों के समकक्ष स्थान का अधिकारी माना। उन्होंने अनेक नारियों के चित्र अंकित किए जो अपने पथभ्रष्ट पतियों को सही मार्ग पर ले आती हैं। 'जुलूस' कहानी में मृदुला तथा 'शराब की दुकान' में श्रीमती सक्सेना प्रगतिशील नारी हैं। गांधी जी के प्रभावस्वरूप ही प्रेमचन्द ने दहेज, पर्दा और बालविवाह का विरोध किया तथा बाल विधवाओं के लिए पुनर्विवाह की अनिवार्यता सिद्ध की। उन्होंने वेश्याओं के लिए आश्रमों की स्थापना कर उन्हें शिक्षित और स्वावलम्बी बनाने की सम्मति दी तथा स्वेच्छापूर्वक

1. हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास, पृ. 154
2. "नारी केवल माता है और उसके उपरान्त वह जो कुछ है वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र है। मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान् विषय है।" —गोदान, पृष्ठ 167

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वरण करने वाला पुरुष मिलने पर उन्हें विवाह कर मर्यादित जीवन जीने की भी स्वतंत्रता पर बल दिया। विदेशी-शिक्षा-प्राप्त उच्छृंखल पुरुषों की समकक्षता की लालसा से शालीनता छोड़कर अभद्रता अपनाने वाली नारियों की उन्होंने कटु विगर्हणा की, किन्तु पाश्चात्य नारी से निर्भीकता, स्वावलम्बन आदि गुणों को ग्रहण करने पर बल दिया। इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द के नारी विषयक दृष्टिकोण में निरन्तर विकास हुआ। समय की माँग के अनुसार वे अपने को बदलते चले, इसीलिए उनके सिद्धान्त सार्वकालिक और शाश्वत हैं।

निष्कर्ष

महान्-से-महान् लेखक भी समाज की उपज होता है। प्रेमचन्द की नारी के प्रति दृष्टि के विधायक उनका व्यक्तिगत जीवनानुभव, सांस्कृतिक-साहित्यिक परिवेश और अध्ययन तथा युगीन परिवेश थे। नारी के माता और विमाता रूपों का परिचय उन्होंने अपने जीवन में पाया तो उसके उदात्त रूपों का परिचय प्राचीन साहित्य द्वारा। उर्दू, बांग्ला, अंग्रेज़ी तथा पूर्ववर्ती साहित्य ने भी उन्हें नारी के विभिन्न रूपों और समस्याओं से अवगत कराया। युगीन परिवेश ने उन्हें उन नारी सम्बन्धी समस्याओं के प्रति जागरूक बनाया जो अपना समाधान पाने के लिए व्याकुल थीं। इस सबको मिलाकर उन्होंने अपनी सम्मतियाँ और दृष्टिकोण प्रस्तुत किए। संवेदनशील होने के कारण उन्होंने सबको खुली आँखों से देखा, किन्तु अपनाया परखने के पश्चात्। उनका व्यक्तित्व कहीं भी किसी विशिष्ट काल या व्यक्ति के आदर्शों से आच्छादित नहीं हुआ। उनकी मौलिकता और प्रतिभा सर्वत्र अबाधित रही, इसीलिए वे जात्यातीत, धर्मातीत और कालातीत नारीत्व की परिकल्पना कर सके।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

द्वितीय अध्याय

नारी के जीवन एवं व्यक्तित्व के प्रति प्रेमचन्द की संदृष्टि

प्रेमचन्द साहित्य को सद्वृत्तियों का उन्नयन करनेवाला तथा लोकमंगल-विधायक मानते थे। फल लाने में असमर्थ फूल और जलहीन मेघ उनकी दृष्टि में निरर्थक थे। इसी प्रकार उन्हें जीवन को उन्नत बनाने वाला सौन्दर्य ही काम्य था। तद्युगीन समाज में शोषितों की दुरवस्था से क्षुब्ध हो वे आजीवन उनके हितों के लिए संघर्ष करते रहे। शोषित नारी के प्रति उनकी करुणा सर्वाधिक मुखर रही। उनसे पूर्व भी साहित्य में नारी के विभिन्न रूपों को प्रतिपाद्य-रूप में ग्रहण किया गया। युग के साथ युगीन मान्यताओं और मानदण्डों में भी परिवर्तन आया तथा साहित्यकारों ने प्रेरक रूप में नारी के दर्शन किए। प्रेमचन्द ने सर्वप्रथम नारी के सर्वांगीण व्यक्तित्व को संवेदनापूर्वक ग्रहण किया तथा मानव-विज्ञानवेत्ता के रूप में अनुभूति के धरातल पर उसका चित्रण इस प्रकार किया कि वह मानव-मात्र में सद्वृत्तियों का उन्नायक बन सके। छिछली श्रृंगारिक मनोवृत्ति और विलासिता को उद्दीप्त करने वाले चित्रणों से उन्हें विरक्ति थी। इसलिए उन्होंने अपनी रचनाओं में नारी-हृदय की उन शाश्वत भावनाओं को उद्घाटित और प्रकाशित किया जो उपेक्षित रहीं। उन्होंने उसके चारित्रिक गुण-दोषों का तटस्थ विवेचन किया। इस दृष्टि से यह कथन संगत है कि ''प्रेमचन्द की नारी-भावना की भी सर्वप्रमुख विशेषता यही है कि उसका चित्रण रमणी के श्रृंगारजन्य विलासात्मक आकर्षण के हेतु नहीं, अपितु मनुष्यत्व को ऊँचा उठाने और मनुष्य के मन में ऊँचे विचार पैदा करने के हेतु हुआ। समय की माँग, साहित्यिक प्रगतिशीलता, समाजोपयोगी भावना तथा निजी व्यक्तित्व की संघर्षमयी गरिमा की प्रेरणा-स्वरूप प्रेमचन्द की नारी-भावना ने हिन्दी कथा-साहित्य में एक युगान्तर प्रस्तुत किया है।''[1]

प्रेमचन्द का नारी विषयक दृष्टिकोण उनके उपन्यासों में अधिक व्यक्त हुआ है, तथापि कहानियों में और शिवरानी देवी कृत 'प्रेमचन्द घर में' के अन्तर्गत भी उस पर प्रकाश डालने वाले स्थल मिल जाते हैं। प्रेमचन्द ने नारी के शाश्वत रूपों में से उसके प्रेयसी, पत्नी, माता रूपों का अंकन किया है तथा विभिन्न परिस्थितियों में इनके

---

1. डॉ. ओम अवस्थी— प्रेमचन्द के नारी पात्र, पृ. 26

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

व्यवहार में आने वाले बदलावों एवं इनकी समस्याओं के स्वरूप, कारणों और निदान पर भी प्रकाश डाला है।

1. नारी और पुरुष

प्रकृति और पुरुष के संघात से उत्पन्न सृष्टि में नारी के वर्चस्व और अस्मिता से अवगत लेखक ने उसे पुरुष की सहधर्मिणी और उसके व्यक्तित्व की पूरक तो माना ही, इसके साथ ही क्षमा, दया, त्याग, अहिंसा आदि उच्चतम आदर्शों की अधिष्ठात्री होने के कारण उससे श्रेष्ठ भी माना। उनका दृढ़ विश्वास था कि शिक्षा, स्वतन्त्रता, आर्थिक दृढ़ता आदि विकास की समुचित सुविधाएँ उपलब्ध होने पर वह पुरुष से अधिक श्रेष्ठ और सम्माननीय बन सकती है। नारी की तुलना में पुरुष स्वार्थी, आत्मकेन्द्रित और शंकालु प्रवृत्ति का होने के कारण विकास के क्रम में उससे कहीं पीछे छूट जाता है।[1] 'गोदान' में मेहता मानो उनके ही स्वर में बोलते हुए कहता है—"मैं प्राणियों के विकास में स्त्री के पद को पुरुषों के पद से श्रेष्ठ समझता हूँ, उसी तरह जैसे प्रेम, त्याग और श्रद्धा को हिंसा, संग्राम और कलह से श्रेष्ठ समझता हूँ।"[2] वे नारी को शक्ति-सम्पन्न देखना चाहते थे। दुर्बल नारी उनका काम्य नहीं थी। उनकी कहानियों में 'निर्वासन' की मर्यादा, 'भूत' की विंध्येश्वरी, 'सोहाग का शव' की सुभद्रा, 'लांछन' की देवी, 'स्त्री और पुरुष' की आशा, 'रानी सारन्धा' की सारन्धा, 'दिल की रानी' की हमीदा तथा 'मर्यादा की वेदी' की प्रभा पुरुषों से अधिक श्रेष्ठ हैं।

यही नहीं, प्रेमचन्द की नारी कुमार्गगामी तथा दुराचारी पुरुष को अपने आदर्श व्यवहार द्वारा सत्पथ पर लाने वाली प्रेरक शक्ति भी है। अपने व्यक्तित्व के प्रखर आकर्षण तथा चारित्रिक उत्कृष्टता से वे पुरुष को नैतिकता, सत्कार्य और परोपकार की प्रेरणा देकर पथभ्रष्ट होने से बचाती हैं। 'चमत्कार' कहानी में चम्पा दुराचारी चन्द्रप्रकाश को सत्पथ पर ले आती है। 'पत्नी से पति' की गोदावरी मि. सेठ को राष्ट्र-प्रेमी बना देती है। 'जुलूस' का अत्याचारी बीरबल पत्नी मिट्ठनबाई के समझाने से हिंसा त्याग देता है तथा 'सोहाग का शव' का केशवन सुभद्रा के अप्रतिम त्याग के सम्मुख नतमस्तक हो जाता है। इसके अतिरिक्त 'उन्माद' की बागेश्वरी, 'स्त्री और पुरुष' की आशा, 'स्वर्ग की देवी' की लीला, तथा 'इस्तीफा' की शारदा भी पुरुषों की

---

1. "पुरुष में थोड़ी पशुता भी होती है जिसे वह इरादा करने पर भी हटा नहीं सकता। यह पशुता उसे पुरुष बनाती है। विकास के क्रम में वह स्त्री से पीछे है। ...वात्सल्य, स्नेह, कोमलता, दया इन्हीं आधारों पर सृष्टि टिकी हुई है और ये स्त्रियों के गुण हैं।"

—कर्मभूमि, पृ. 222

2. गोदान, पृ. 134

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पथ-प्रदर्शिका और प्रेरक शक्ति रही हैं। लेखक ने अपने विशद और व्यापक वर्णन-क्षेत्र में विभिन्न स्रोतों से ऐसे नारी पात्रों का चयन किया है। उनकी ग्रामीण और शहरी युवतियाँ, विधवाएँ और वृद्धाएँ तथा उच्च, मध्य और निम्नवर्गीय नारियाँ भी अपने संवेद्य को प्रभावित करती हैं। अन्तर मात्र इतना है कि शहरी वातावरण में पली नारियों में साहस, स्पष्टवादिता है तो ग्रामीण नारियों में धर्मभीरुता, उदारता और कर्त्तव्यनिष्ठा।

2. नारी का परम्परागत आदर्श रूप

प्रेमचन्द की नारी-संदृष्टि का आधार परम्परागत सांस्कृतिक मान्यताएँ थीं। वे आधुनिकता के उपयोगी अंशों की उपेक्षा न करते हुए नारी में त्याग, धैर्य, विनय, ममत्व, सतीत्व आदि गुणों की सन्निहिति अनिवार्य मानते थे। उनकी तद्विषयक स्वीकारोक्ति है—"मेरा नारी का आदर्श है एक ही स्थान पर त्याग, सेवा और पवित्रता का केन्द्रित होना। त्याग बिना फल की आशा के हो, सेवा सदैव बिना असंतोष प्रकट किए हो और पवित्रता सीज़र की पत्नी की भाँति ऐसी हो जिसके लिए पछताने की आवश्यकता न पड़े।"[1] उनकी नारियाँ द्विवेदीयुगीन मध्यवर्गीय आदर्शवाद और मर्यादावाद की प्रतीक हैं तथा युग के सुधारवादी मूल्यों के अनुरूप अपनी धारा को विकसित और परिवर्तित करने में सक्षम हैं।

उन्होंने नारी-जाति को 'बड़प्पन सिर उठाने में नहीं बल्कि सिर झुकाने में है' का शाश्वत सन्देश दिया। नारी में सेवा- भाव को वे सम्पत्ति और मताधिकार से भी अधिक महत्त्वपूर्ण मानते थे क्योंकि उसके माध्यम से अन्य सब कुछ सहज ही प्राप्त किया जा सकता है।[2] वस्तुतः अधिकार, क्रोध और प्रेम के भावों को भी सेवा द्वारा व्यक्त कर स्त्री अपने दाम्पत्य को जीवनपर्यन्त स्नेह और साहचर्य में इस प्रकार जोड़े रखती है जैसे सीमेंट दो पत्थरों को। विच्छेद, परित्याग और अविश्वास भी सेवा के अभाव में ही घटित होते हैं।[3] 'रानी सारन्धा' कहानी में सारन्धा अपने त्याग और सत्साहस के कारण, 'बड़े घर की बेटी' में आनन्दी अपनी सहनशीलता और सद्भाव के कारण, 'मर्यादा की वेदी' में प्रभा और 'पाप का अग्निकुंड' में राजनन्दिनी उच्चस्तरीय भावनाओं तथा निष्ठा द्वारा भारतीय नारी के उच्चादर्शों के अनुरूप कार्य करती हैं। विभिन्न वर्गों तथा सामाजिक स्तरों की नारियाँ समान रूप से आदर्श-पालन के प्रति उन्मुख हैं। मध्यवर्गीय स्थितियों में पली गोदावरी ('सौत') की उत्कृष्ट त्याग वृत्ति, सेवा-भाव और सहनशीलता प्रशंसनीय है। पति की इच्छा को सर्वोपरि मान वह प्राणोत्सर्ग के

1. प्रेमचन्द : एक विवेचन—इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ 155
2. देखिए : गोदान, पृष्ठ 166
3. देखिए : गोदान, पृष्ठ 138

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लिए तत्पर हो जाती है। यद्यपि पारिवारिक मर्यादा का रक्षण सबके लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न रहता है तथापि आयु, अनुभव, क्रियाशीलता तथा सहिष्णुता की मात्रा सबमें भिन्न होती है। वृद्धाएँ यदि वात्सल्य, उदारता, व्यापक स्नेह, करुणा का आदर्श प्रस्तुत करती हैं ('ममता' की माँ, 'ईश्वरीय न्याय' की सत्यनारायण की माँ, 'ग़रीब की हाय' की मूँगा) तो प्रौढ़ाएँ ('ईश्वरीय न्याय' की भानकुंवरि, 'ज्वालामुखी' की रमणी) गंभीरता, कर्त्तव्य-निष्ठा तथा सहिष्णुता का। युवतियों में कतिपय अपवादों ('धर्मसंकट' की कामनी, 'ममता' की मिसेज़ रामरक्षा) को छोड़ कर सब में सेवा-भाव मिलता है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के अनुसार "यहाँ स्त्री-चरित्र की इन मान्यताओं के पीछे प्रेमचन्द की इतनी धारणाएँ थीं—भारतीय आर्यललनाओं, पत्नियों की आदर्श संयुक्त परिवार में आस्था और स्त्री-चरित्र के पीछे शिवं सुन्दरम् की भावना।"[1]

यह ध्यातव्य है कि विकास काल की कहानियों में लेखक के दृष्टिकोण में परिवर्तन मिलता है। उनके नारी-पात्र अधिक यथार्थवादी और सशक्त हैं। वे साहस, धैर्य और विवेक से अन्याय का प्रतिरोध करती हैं, मूक रहकर पुरुष के अनाचार और अत्याचार को सहती नहीं। 'शंखनाद' कहानी में गुमान की स्त्री सहनशीलता के असह्य बोझ को उतार फेंकती है तथा पति की अकमण्यता की तीव्र भर्त्सना करती है। 'नैराश्य लीला' की ज्वालामुखी पुरुष वर्ग के प्रति प्रतिशोध-भाव से युक्त है। वह कहती है—"मुझ में जीवन है, चेतना है। जड़ क्योंकर बन जाऊँ। मुझसे यह नहीं हो सकता कि अपने को अभागिनी, दुःखिया समझूँ और रोटी का एक टुकड़ा खाकर पड़ी रहूँ...मैं अपने आत्मसम्मान की रक्षा कर सकती हूँ। मैं इसे घोर अपमान समझती हूँ कि पग-पग पर मुझ पर शंका की जाए। नित्य कोई चरवाहे की भाँति मेरे पीछे लाठी लिए घूमता रहे। यह दशा मेरे लिए असह्य है। पुरुष क्यों स्त्री का भाग्य-विधाता है ? स्त्री क्यों नित्य पुरुषों का आश्रय चाहे, क्यों उसका मुंह ताके।"[2] 'आभूषण' कहानी की नायिका तो ईश्वर के प्रति क्षोभ व्यक्त करने में भी नहीं सकुचाती।

यह स्मरणीय है कि प्रेमचन्द नारी की इस साहसिकता के साथ ही उसके व्यक्तित्व के विमल निष्कपट रूप को भी व्यक्त करते चलते हैं। अपनी मुखरता और स्पष्टवादिता के बावजूद उनकी नारी पुरुषों की अपेक्षा अधिक संतुलित, सरल और विश्वसनीय रहती है। अवसरवादिता, कपट, द्वेष आदि असामाजिक प्रवृत्तियाँ उसका संस्पर्श नहीं कर पातीं। 'ब्रह्म का स्वाँग', 'ईश्वरी न्याय', 'विध्वंस' की चरित नायिकाओं के उद्गार नीतियुक्त तथा उनके सबल व्यक्तित्व को प्रकाशित करते हैं। यह सबलता उच्च, मध्य तथा निम्न स्तरीय स्त्रियों में समान रूप से मिलती है। प्रौढ़ काल की

1. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, पृष्ठ 111
2. प्रेमचन्द : मानसरोवर, भाग-3, नैराश्य लीला, पृष्ठ 59

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कहानियों की चरितनायिकाओं में, चाहे वे नगर की हों या गाँव की, स्वत्व-प्राप्ति और रक्षा की चेतना तथा शक्ति मिलती है। 'उन्माद' की उच्च संस्कारों में पली बागेश्वरी तथा 'ठाकुर का कुआँ' की अतिसामान्य सुखिया इसका साक्षात् प्रमाण हैं। पाश्चात्य शिक्षा को नारी के लिए घातक मानते हुए भी प्रेमचन्द ने नारी की स्वातंत्र्यभावना को प्रमुखता दी है।

आचारनिष्ठा भारतीय संस्कृति की महती विशेषता है। प्रेमचन्द भी सतीत्व एवं पवित्रता को नारी का आभूषण मानते थे। नारी चाहे जिस भी जाति, वर्ग, स्तर अथवा वय की हो उसमें चरित्रहीनता उन्हें सह्य नहीं थी। पातिव्रत उनकी लेखनी का मूलाधार था। नारी के प्रति अत्यधिक सदय होने के कारण उसके शाश्वत पतन की परिकल्पना भी उनके लिए संभव नहीं थी। इसीलिए उसके पतन के लिए वे पुरुष की स्वार्थी वृत्ति, दूषित सामाजिक व्यवस्था तथा कहीं-कहीं स्वयं नारी की दमित असंतोष-वृत्ति और अकर्मण्यता को उत्तरदायी ठहराते हैं। यहाँ तक कि उनकी वेश्याएँ भी दैनिक जीवन में नैतिकता को महत्त्व देती हैं तथा आदर्श जीवन व्यतीत करना चाहती हैं। प्रेमचन्द ने उनके पतन के कारणों—अनमेल विवाह, नारी की सच्चरित्रता पर शंका, पुरुष की कामलोलुपता, दलालों तथा कुटनियों का कुचक्र, नारी-मन की दुर्बलता, परम्परागत विवशता तथा परिस्थितियाँ—पर प्रकाश डालते हुए उनके बाह्य व्यवहार के नीचे दबी सहज नारी-भावना और नारी-सुलभ गुणों का उद्घाटन किया है।[1] 'बहिष्कार' कहानी की गोविन्दी, 'सती' की मुलिया, 'दो सखियाँ' की चन्दा सतीत्व का आदर्श प्रस्तुत करती हैं। 'राजा हरदौल' में कुलीना अपने पातिव्रत को सिद्ध करने के लिए देवर की हत्या तक करने के लिए तैयार हो जाती है। प्रेमचन्द ने सतीत्व-भ्रष्ट नारियों को अन्ततः घोर यन्त्रणा सहते दिखाया है—यथा 'ज्वालामुखी', 'धर्मसंकट', 'नया विवाह' आदि कहानियों में। उनके स्त्री-पुरुष दोनों इस दिशा में समान रूप से तत्पर रहते हैं।

विकास काल की कहानियों में प्रेमचन्द कृत्रिम सामाजिक बन्धनों से ऊपर उठकर पारस्परिक सहयोग, सद्भाव तथा समानता द्वारा चरित्र-गठन पर बल देते दृष्टिगत होते हैं। 'लांछन' कहानी में पति के प्रति एकनिष्ठ और पूर्ण समर्पित देवी अकारण लांछित, उपेक्षित और अपमानित किए जाने पर धैर्य खो अपने अधिकारों के प्रति आग्रहशील हो उठती है।

---

1. "आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि उनमें कितनी धार्मिक श्रद्धा, पाप-जीवन से कितनी घृणा, अपने जीवनोद्धार की कितनी अभिलाषा है।...उन्हें केवल एक सहारे की आवश्यकता है।"
—प्रेमचन्द : 'सेवासदन', पृष्ठ 211

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सार्वजनीन समस्या का समाधान प्रस्तुत कराया है। नारी को भी बंधनग्रस्त रूढ़ियों को तोड़ अपने अधिकारों को लेने के लिए प्रेरित किया है। 'दो कब्रें' की सुलोचना, 'विश्वास' की मिस जोशी इसी प्रगतिशील धारा का प्रतिनिधित्व करती हैं। स्त्री-स्वातंत्र्य का समर्थन, पर्दा-प्रथा का विरोध, आर्थिक स्वावलम्बन आदि की चर्चा भी उन्होंने इसी सन्दर्भ में की। किन्तु नारी के असंयत आचरण और उच्छृंखलता का उन्होंने सर्वत्र विरोध किया है। घर को वास्तविक कार्यक्षेत्र मानने पर भी विशिष्ट स्थितियों में जीविकोपार्जन हेतु उसके घर से बाहर जाने को भी उन्होंने अनुचित नहीं माना। इसी प्रकार नारी के लिए वे पाश्चात्य शिक्षा की अपेक्षा भारतीय गृहोपयोगी शिक्षा को ही आदर्श समझते थे। आधुनिकता के नाम पर पर-पुरुषों के साथ क्लबों में नाचती स्त्रियों की फूहड़ निर्लज्जता, पाश्चात्य अन्धानुकरण से प्रेरित वस्त्रालंकृति और कामवासनाओं की तृप्ति के लिए उचित-अनुचित मार्ग का ग्रहण उन्हें कभी पसन्द नहीं आया। ऐसी स्त्रियों को अन्ततः उन्होंने ग्लानिपूरित ही दिखाया है। 'कैदी', 'उन्माद', 'शाप', 'शान्ति' आदि कहानियों में उन्होंने विभिन्न नारी पात्रों के माध्यम से उक्त मत का प्रतिपादन किया है।

दाम्पत्य जीवन में आने वाले उतार-चढ़ाव के बावजूद उन्हें नारी-पुरुष के मध्य अलगाव की स्थिति असह्य थी।[1] उन्होंने स्वयं अपनी रुग्णा, कर्कशा पत्नी के साथ यथाशक्ति संतुलन बैठाए रखने का प्रयत्न किया था और उसके स्वेच्छा से मायके चले जाने पर भी जीवन-भर उसके भरण-पोषण का भार वहन करते रहे। 'कुसुम' कहानी में अवश्य उन्होंने धन के लोभी पुरुष से पृथक् रहने की अनुमति दी है, किन्तु स्वतंत्र रूप से वे उसका अनुमोदन कहीं नहीं करते। उन्होंने दाम्पत्य जीवन को स्थिर बनाये रखने का दायित्व भी स्त्रियों पर डाला तथा अनमेल और बाल-विवाहों को रोकने की सम्मति दी। परित्यक्ताओं का अंकन उन्होंने किया अवश्य, किन्तु नारी को यथासंभव इस स्थिति से बचने की सम्मति दी। इसी प्रकार उन्होंने सपत्नियों का भी चित्रण पारिवारिक कलह के कारणों का विवेचन करते हुए किया है। प्रदर्शन, विलासिता तथा मध्यवर्ग में कुलीन वरों की अल्पता को इसका कारण बतलाते हुए उन्होंने इस प्रथा को समस्या के रूप में विवेचित किया है। दाम्पत्य का आधार पति-पत्नी का एकान्त समर्पण होता है जो एकाधिक पत्नियों के होने पर नितान्त असंभव और अस्वाभाविक हो जाता है। पति का किसी एक के प्रति पक्षपात अथवा दो स्त्रियों की परस्पर प्रतिस्पर्धा सम्बन्धों को विकृत कर देती है। 'अग्नि समाधि' कहानी में इसका दुःखद

---

1. "विवाह को मैं सामाजिक समझौता समझता हूँ। उसे तोड़ने का अधिकार न पुरुष को है न स्त्री को। समझौता करने से पहले आप स्वाधीन हैं, समझौता हो जाने के बाद आपके हाथ कट जाते हैं।"—गोदान, पृष्ठ 53

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

परिणाम अंकित किया गया है।

नारी के प्रेम का सर्वाधिक उत्कृष्ट और आदर्श रूप उसके मातृत्व में होता है। उसे प्राप्त करते ही उसका सारा अहं स्वत: तिरोहित हो जाता है। वह उसे ही अपनी सारी साधना, तपस्या, त्याग और विजय मान तुष्ट रहती है। प्रेमचन्द की कहानियों में चित्रित माताएँ पुत्र तथा पुत्री दोनों के प्रति समान रूप से वात्सल्यमयी और समर्पित रहती हैं। 'पिसनहारी का कुआँ' में हरनाम की स्त्री तथा 'वरदान' की सुशीला अपनी पुत्रियों के लिए पुत्र के समान ही चिन्तित रहती हैं। स्वत: नि:सन्तान होते हुए भी दूसरी स्त्रियों के बच्चों को संतानवत् पालन-पोषण करने वाली माताओं का भी उन्होंने अंकन किया है। पुत्री के अभाव में पुत्रों के प्रति स्वभावत: आ जानेवाली रुक्षता का चित्रण 'भूत' कहानी में हुआ है।

विमाता-रूप में स्त्री को चित्रित करते हुए उन्होंने उसके आदर्श और अनादर्श रूपों का तटस्थ विवेचन किया है। 'निर्मला' उपन्यास में विमाता के प्रति उनकी वितृष्णा स्पष्ट रही है।[1] किन्तु विमाता के कटु स्वभाव के कारणों पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लड़कियों के अल्पायु में विवाह को मुख्य कारण माना है क्योंकि तब उनमें मातृत्व की भावना का अभाव होता है। वृद्ध-विवाहों में पति-पत्नी के समवयस्क न होने पर पत्नी की अतृप्त यौन कुंठा कठोर व्यवहार के रूप में व्यक्त होती है। समाज में भी विमाता को कभी यथोचित सम्मान नहीं मिलता। उसे सदैव सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है। बच्चे भी उसे निश्छल स्नेह देने में असमर्थ रहते हैं। 'अलग्योझा' कहानी में इसका बड़ा ही सशक्त चित्रण मिलता है' उक्त धारणा के मूल में उनका व्यक्तिगत जीवनानुभव ही रहा है किन्तु 'विमाता' कहानी में उन्होंने विमाता के भी आदर्श रूप का अंकन किया है। 'कानूनी कुमार' कहानी में अधिक सन्तानोत्पत्ति से जीर्ण और अस्वस्थ रहने वाली माताओं के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई है। वे दो से अधिक सन्तान उत्पन्न करने वाले दम्पत्तियों को दंड का भागी मानते हैं।[2]

5. राष्ट्र-सेविका नारी

प्रेमचन्द ने नारी को राष्ट्र-सेविका के रूप में भी अंकित किया है। 'पत्नी से पति' की गोदावरी, 'जुलूस' की मिट्ठनबाई तथा 'रानी सारन्धा' की सारन्धा ऐसी ही नारियाँ

1. "ईश्वर न करे, लड़कों को सौतेली माँ से पाला पड़े। जिसे अपना बना-बनाया घर उजाड़ना हो, अपने प्यारे बच्चों की गर्दन पर छुरी फेरवानी हो, वह बच्चों के रहते अपना दूसरा ब्याह करे।"ऐसी देवी ने जन्म ही नहीं लिया, जिसने सौत के बच्चे को अपना समझा हो।" —निर्मला, पृष्ठ 36
2. "दो बच्चों से ज्यादा जिसके हों, उसे कम-से-कम पाँच वर्ष की कैद, उसमें पाँच महीने से कम काल-कोठरी न हो; जिसकी आमदनी सौ रुपये से कम हो, उसे सन्तानोत्पत्ति का अधिकार ही न हो।" —मानसरोवर, भाग-2, 'कानूनी कुमार', कहानी, पृष्ठ 247

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हैं। डॉ. भरत सिंह के अनुसार, ''प्रेमचन्द के साहित्य में नारी प्रेम के उस स्वरूप के, जिससे वह सरस, आह्लादक, आकर्षक और प्रेरणास्पद बन जाता है, अनेक उदाहरण उपलब्ध हो जाते हैं। कहीं वह माता के निर्विकार वात्सल्य के रूप में छलका है, तो कहीं पति-प्रेम के रूप में प्रवाहित हुआ है। कहीं प्रेमिका की भीनी चितवन के रूप में उसने अपने प्रेमी को छला है तो कहीं राष्ट्रीय भावना से उद्‌बुद्ध होकर राष्ट्र की पावन बलिवेदी पर ही समर्पित हो गया हैं। लेकिन यह उसकी सर्वोपरि विशेषता रही है कि वह सर्वत्र पवित्र बना रहा। कहीं पर भी उसमें आंशिक अपावनता का लेश भी नहीं आ पाया है।''[1] उनकी राष्ट्र-सेविका नारियाँ विवाहित और अविवाहित दोनों हैं किन्तु उनके योगदान की स्थितियों में पर्याप्त भिन्नता है।

6. शोषिता नारी

वैधव्य स्त्री-जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है। प्रेमचन्द भारतीय विधवा के दारुण यातनामय जीवन से परिचित थे। वे विधवा-समस्या को वेश्या का एक कारण मानते थे। आर्यसमाज के प्रभावस्वरूप उन्होंने इसके उन्मूलन का भरसक प्रयास भी किया। 'बेटों वाली विधवा', 'नैराश्य लीला', 'धिक्कार', 'मृतक भोज' जैसी कहानियों में उन्होंने आभिजात्य, मध्यवित्त तथा अल्पवित्त, बाल, किशोरी, युवा, प्रौढ़ा, संतान-वती तथा निःसन्तान विधवाओं के मार्मिक चित्र अंकित किए हैं। इनमें मध्यवित्त विधवाओं के चित्र सर्वाधिक करुण हैं क्योंकि आभिजात्य वर्ग की विधवाएँ या तो सती हो जाती थीं या फिर जीविकोपार्जन की चिन्ता से मुक्त भजन-पूजन में शेष जीवन काट देती थीं। अल्पवित्त विधवाएँ पुनर्विवाह के लिए स्वतंत्र थीं। स्वतः कर्मठ होने के कारण उन्हें भी अर्थाभाव नहीं झेलना पड़ता था। मध्यवित्त विधवाओं को ही धार्मिक रूढ़ियों, सामाजिक अन्धविश्वासों, बिरादरी के षड्यन्त्रों का शिकार बनना पड़ता था। सभी वर्गों की विधवाओं के अंकन द्वारा उन्होंने एक ही समस्या के प्रति होने वाली विभिन्न प्रतिक्रियाओं का यथार्थ अंकन किया है।

विधवा-समस्या के कारणों का विवेचन करते हुए उन्होंने अनमेल विवाह, बाल-विवाह, पौष्टिक आहार तथा चिकित्सा के अभाव में होने वाली अकाल मृत्यु का उल्लेख किया है। उन्होंने समवयस्कता का ध्यान रखते हुए निःसंतान, बालिका, किशोरी तथा युवा विधवाओं के पुनर्विवाह का अनुमोदन किया है। यदि पुरुष स्वेच्छा से उनका वरण करते हैं तो ठीक है अन्यथा मात्र वासना-तृप्ति या शील-भंग के लिए किया गया विधवा-विवाह उन्हें स्वीकार्य नहीं था। 'अलग्योझा', 'स्वामिनी' तथा 'बालक' कहानियों में वे विधवा-विवाह का अनुमोदन करते हैं। 'बेटों वाली विधवा'

---

1. सत्येन्द्र : 'प्रेमचन्द' में संकलित डॉ. भरतसिंह का 'प्रेमचन्द के नारी विषयक विचार' लेख, पृष्ठ 69

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

की फूलमती तथा 'शान्ति' कहानी की गोपा पुत्रवती विधवाएँ हैं जो वात्सल्य की डोर पकड़कर वैधव्य और भोग के द्वन्द्व को झेलती जीवन काटती हैं। सतीत्व को प्राथमिकता देनेवाली तथा पति की स्मृति में जीवन काटनेवाली विधवाओं के प्रति उनकी दृष्टि सम्मान की थी। वे उन्हें पुनर्विवाह न करके स्वावलम्बी बनने की ही प्रेरणा देते हैं।

जिन वेश्याओं को समाज का कोढ़ मानकर तिरस्कृत किया जाता है उनके प्रति भी प्रेमचन्द की पूर्ण सहानुभूति थी। उन्होंने अनमेल विवाह, अशिक्षा, आर्थिक परावलम्बन, पारिवारिक कलह, स्त्री के प्रति पुरुष की निर्मूल शंका-दृष्टि, दूषित सामाजिक व्यवस्था, पुरुष में चारित्रिक दृढ़ता और नैतिक बल का अभाव तथा स्वयं नारी के भौतिकता के प्रति आकर्षण को इस घिनौनी समस्या का जनक माना। उनका दृढ़ विश्वास था कि नारी के लिए उसका सतीत्व ही सर्वाधिक मूल्यवान् होता है। वह विषमतम परिस्थितियों में भी उसे यथाशक्ति सुरक्षित बनाए रखती है। पुरुष ही उसकी विवशता का अनुचित लाभ उठाते हुए उसे नैतिक स्खलन की इस स्थिति तक पहुँचाता है।[1] 'वेश्या', 'दो कब्रें', 'आगा-पीछा' कहानियों में उन्होंने वेश्याओं के साथ ही उनकी सन्तानों को मिलने वाली उपेक्षा और तिरस्कार का भी अंकन किया है।

वेश्याओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए वे पुरुषवर्ग की कामुक, विलासी वृत्ति का परिवर्तित होना नितान्त आवश्यक मानते थे। अपनी प्रारंभिक रचनाओं में युगीन वातावरण के प्रभावस्वरूप उन्होंने रक्षात्मक संस्थाओं और आश्रमों की स्थापना का भी सुझाव दिया है। उस समय पांडिचेरी में स्थापित अरविन्द महिला आश्रम और गांधी जी द्वारा स्थापित साबरमती आश्रम उनके आदर्श थे जिनमें नारी को जीवनोपयोगी शिक्षा देकर स्वावलम्बी बनने के साथ ही यथोचित संरक्षण दिया जाता था। जैसे-जैसे ऐसी संस्थाओं में भीतर-ही-भीतर पलने वाले भ्रष्टाचार से वे अवगत हुए, उनका दृष्टिकोण भी परिवर्तित होता गया। वे सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन को अनिवार्य मानने लगे तथा स्वेच्छापूर्वक उनसे विवाह करने वाले युवकों को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करने लगे। 'ऐक्ट्रेस' कहानी में कुँवर साहब सामाजिक लांछनों की उपेक्षा करते हुए तारा से विवाह करने के लिए प्रस्तुत होते हैं। 'अग्नि समाधि' में कौशल्या के रूप में ऐसी नारी का अंकन मिलता है जो न तो परिणीता है न वेश्या, किन्तु जो समाज से टक्कर लेने की क्षमता से युक्त होने के कारण लोकापवाद से न डरकर अपना प्राप्य

---

1. "हमारी लाखों बहनें इस भाँति केवल जीवन-निर्वाह के लिए पतित हो जाती हैं···अगर उन बहनों को सूखी रोटियों और मोटे कपड़ों का भी सहारा हो, तो वे अन्त समय तक अपने सतीत्व की रक्षा करती रहें। स्त्री हारे दर्जे की दुराचारिणी होती है। अपने सतीत्व से अधिक उसे संसार की किसी और वस्तु पर गर्व नहीं होता, न वह किसी चीज़ को इतना मूल्यवान् समझती है।"

—प्रतिज्ञा : प्रेमचन्द, पृष्ठ 87-88

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पाने के लिए घोर श्रम करती है। ऐसी रखैलों के चित्र भी अल्पवित्त वर्ग से सम्बद्ध कहानियों में मिलते हैं क्योंकि वहाँ नैतिकता के बंधन इतने कठोर नहीं हैं जितने उच्च या मध्य वर्ग में।

प्रेमचन्द नारी-मनोविज्ञान के पारखी थे। उन्होंने 'गृहदाह', 'ठाकुर का कुआँ', 'सौत', 'मृतक भोज' तथा 'बेटों वाली विधवा' कहानियों में विभिन्न वर्गों की नारियों को विविध स्थितियों के मध्य रखकर उनके मनोभावों और प्रतिक्रियाओं का संतुलित विवेचन किया है तथा उनके अन्तर्मन के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करके उनके स्वाभाविक चरित्र एवं विश्वसनीय व्यक्तित्व का तथ्यपूर्ण विश्लेषण किया है। विशेष रूप से उनकी प्रौढ़काल की कहानियों के नारी पात्रों में सद्गुणों और उत्कृष्ट चारित्र्य के साथ ही मानवीय कुण्ठाओं, दुर्बलताओं और तज्जनित प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण अत्यन्त सशक्त और प्रभावी है। इनमें उनकी दृष्टि न निवृत्तिमूलक रही, न प्रवृत्तिमूलक। न रूढ़िग्रस्त या पूर्वाग्रहयुक्त रही, न नितान्त आधुनिक। उन्होंने सर्वत्र मानवीय और समाजोपयोगी तत्त्वों को निःसंकोच ग्रहण करते हुए अपना निजी मार्ग बनाया। इसीलिए उनकी मान्यताएँ प्राचीन होकर भी जीर्ण नहीं हैं। वे तर्काश्रित, ठोस और सार्वकालिक हैं।[1]

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्रेमचन्द की नारी-संदृष्टि का मूलाधार प्राचीन सांस्कृतिक नारी-रूप रहा। इसीलिए उन्होंने उसे पुरुष के समकक्ष ही नहीं उससे श्रेष्ठ माना। सेवा, त्याग, बलिदान, कर्मठता आदि से युक्त आदर्श नारियाँ आत्मोद्धार के साथ ही पुरुषों को सुपथ पर चलने को प्रेरित करती हैं तथा समाज की उन्नति एवं राष्ट्र के कार्य में भी संलग्न दिखाई देती हैं। प्रेमचन्द ने हर आयु और वर्ग की नारी के इन उभय पक्षों का तटस्थ विवेचन किया तथा उनके पारिवारिक और सामाजिक हितों की रक्षा एवं आर्थिक अधिकारों को दिलाने का पूरा प्रयास भी किया। उनकी नारी-भावना जात्यातीत, धर्मातीत और भेदातीत थी। आयु एवं अनुभव के साथ-साथ उनकी दृष्टि भी उत्तरोत्तर आदर्शवादी से आदर्शोन्मुख यथार्थवादी और यथार्थवादी होती गयी। इसीलिए उनमें प्राचीन और नवीन का अद्भुत समन्वय मिलता है। प्राचीन के सदृश उनकी नारी सेवा, तप, त्याग से युक्त है, किन्तु वह मध्ययुगीन नारी की भाँति विलास और लोभ की पुतली नहीं है। वह आधुनिका है, किन्तु उच्छृंखलता से परे है।

---

1. देखिए : प्रेमचन्द का नारी-चित्रण, डॉ. ओम अवस्थी, पृष्ठ 45

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तृतीय अध्याय

प्रेमचन्द की नारी-केन्द्रित कहानियों में प्रेम

व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों से जो भाव सम्बन्ध-सूत्र को प्रगाढ़ और अन्तरंग बनाते हैं, उनसे व्यक्तिगत मन में उत्पन्न भाव-दशा प्रेम है। यह मानव ही नहीं जीव मात्र की नैसर्गिक और जैविक वृत्ति है। शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तन के साथ-साथ स्वरूप, मात्रा और अभिव्यक्ति के स्तरों पर इसमें अन्तर आ जाता है। सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर इसके नाना भेद भी हो जाते हैं। प्रेम का संचार दैहिक, मानसिक और आत्मिक तीनों स्तरों पर होता है। आत्मिक स्तर पर यह पवित्र, शुद्ध,परिष्कृत, दैवी आदि विशेषणों से युक्त होकर तथा त्याग, बलिदान आदि उदात्त वृत्तियों से संयुक्त होने के कारण आत्मोन्नति का प्रेरक बनता है। दैहिक और मानसिक स्तर पर इसमें सामाजिक व्यवस्थाओं और वैयक्तिक आकांक्षाओं के संघात से ईर्ष्या, स्वार्थपरता, हिंसा, प्रतिशोध तथा स्वेच्छाचारिता का समावेश हो जाता है। रूढ़ियाँ, परम्पराएँ तथा व्यक्तिगत स्वार्थ भी इसे संकीर्ण बना देते हैं।

प्रेमचन्द ने नर-नारी के विभिन्न प्रेम-सम्बन्धों—प्रेम, दाम्पत्य, मैत्री तथा मुक्तभोग में से दाम्पत्य को ही आदर्श माना, अतः उनकी अधिकांश कहानियों का आधार वही है। प्रेम तथा मुक्त भोग पर आधृत कहानियाँ अत्यल्प हैं। उनकी दृष्टि में प्रेम मानवीय गुणों का उदात्त रूप होने के कारण शुद्ध तथा निःस्वार्थ होता है तथा दया, उदारता, त्याग, श्रद्धा, क्षमा आदि गुणों से पुष्ट होता है। वासना-रहित, विशुद्ध एवं आदर्श होने के कारण उसमें हिंसा और प्रतिशोध का सर्वथा अभाव होता है।[1] सेवा और त्याग में ही वह सार्थकता पाता है। 'दो सखियाँ' कहानी की चन्दा कहती है—"प्रेम का एक ही मूल मन्त्र है और वह है सेवा। ...प्रेम का अंकुर रूप में है पर उसको पल्लवित और पुष्पित करना सेवा का ही काम है।"[2] इसी कहानी की पद्मा के अनुसार, "वह प्रेम, प्रेम नहीं है जो प्रत्याघात की शरण ले। प्रेम का आदि सहृदयता है और अन्त भी सहृदयता है।"[3] प्रेमचन्द के नारी पात्र पुरुषों के सद्गुणों पर रीझ पहले उनके प्रति

---

1. "प्रेम हृदय के समस्त सद्भावों का शान्त, स्थिर उद्गारहीन समवाय है। उसमें दया और क्षमा, श्रद्धा और वात्सल्य, सहानुभूति और सम्मान, अनुराग और विराग, अनुग्रह और उपकार सभी मिले होते हैं। ...इनमें से कोई एक भाव प्रेम को अंकुरित कर सकता है। उसका विकास अन्य भावों के मिलने से ही होता है।"—कायाकल्प : प्रेमचन्द, पृष्ठ 208

2-3. मानसरोवर, भाग 4, पृष्ठ क्रमशः 260, 237

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भक्ति और सम्मान का भाव रखते हैं तथा उनका यही भाव अनुकूल परिस्थिति मिलने पर प्रेम में परिणत हो जाता है। 'आगा-पीछा' की श्रद्धा भगतराम की सरलता, निष्कपटता और स्वतंत्र दृष्टिकोण के कारण पहले उसे सम्मान की दृष्टि से देखती है, किन्तु निरन्तर साहचर्य उसके सम्मान-भाव को प्रेम में बदल देता है। वह उसमें अपनी कल्पना के आदर्श पुरुष को साकार पा उसके प्रति पूर्ण समर्पित हो जाती है। 'ऐक्ट्रेस' कहानी की तारा कुँवर साहब के तेजस्वी व्यक्तित्व से प्रभावित होती है, किन्तु कुँवर साहब द्वारा अपने अभिनय की प्रशंसा सुनने तथा नित्य मिलते रहने पर प्रेम करने लगती है। 'वेश्या' कहानी की माधुरी का प्रेम भी इसी प्रकार का है। दयाशंकर के नेत्रों में कामवासना के स्थान पर निश्छल समर्पण का भाव देख वह उनके प्रति आकृष्ट होती है।

वैयक्तिक प्रेम में सुखोपभोग की लालसा तथा स्वार्थ की प्रबलता देख प्रेमचन्द ने उसके स्थान पर समाज-सापेक्ष प्रेम को अधिक वरेण्य बताया। जिस प्रेम का अन्त विवाह न हो वह उनकी दृष्टि में वासनात्मक, कलुषित और निन्द्य था।[1] विवाह से पूर्व के शारीरिक सम्बन्ध को वे उचित नहीं मानते थे, अत: उन्होंने सर्वत्र उसे विफल चित्रित किया है। 'मिस पद्मा' की पद्मा अपने प्रेमी द्वारा सर्वस्वहरण कर लिए जाने तथा अनादृत और तिरस्कृत किए जाने पर भी उसकी कलुषित वासना को नहीं समझ पाती और उसकी अवैध सन्तान के पालन-पोषण के गहन उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के लिए बाध्य होती है। 'त्यागी का प्रेम' की आनन्दीबाई भी विवाह से पूर्व माँ बनने के कारण लोकापवाद झेलती है। नौकरी से निकाले जाने पर वह घोर निर्धनता और मानसिक यंत्रणा भोगती है। किन्तु, प्रेमचन्द की अधिकांश प्रेमिकाएँ शारीरिक सम्बन्ध से दूर रहते हुए मर्यादित जीवन जीती हैं। 'हार की जीत' की लज्जा प्रेम और विवाह को केवल भावात्मक सम्बन्ध नहीं मानती, अत: शारदाचरण के उसके अपेक्षित आदर्श तक पहुँचने से पूर्व उससे विवाह करना या शारीरिक सम्बन्ध उचित नहीं समझती। 'आगा-पीछा' की श्रद्धा तथा 'कायर' की प्रेमा का प्रेम भी इस दृष्टि से पवित्र है। इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रेमचन्द ने सामाजिक-नैतिक परम्पराओं से बँधकर ऐहिक प्रेम की उपेक्षा की है। उन्होंने प्रेम को केवल अविवाहित स्त्री-पुरुषों तक सीमित नहीं रखा, उनके अविवाहित पुरुष वेश्याओं ('ऐक्ट्रेस' के कुँवर साहब, 'वेश्या' के दयाशंकर), परित्यक्ताओं ('रहस्य' के विमल बाबू) से भी प्रेम करते हैं, किन्तु किसी के दाम्पत्य जीवन के विषाक्त होने की संभावना उत्पन्न होते ही वे हृदय-परिवर्तन द्वारा उस प्रेमिका को मार्ग से हटा देते हैं। 'हार की जीत' में लज्जा के त्याग और सेवा से

1. "प्रेम जब आत्मसमर्पण का रूप लेता है, तभी ब्याह है, उसके पहले ऐयाशी है।"

—गोदान, पृष्ठ 147

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रभावित हो सुशीला स्वयं उसके मार्ग से हट जाती है। इसी प्रकार 'दो सखियाँ' में कुसुम पद्मा के जीवन को सुखी बनाने के लिए विनोद के मार्ग से हट जाती है।

प्रेमचन्द ने प्रेम को मानसिक कालुष्य तथा मिथ्याचार को दूर कर प्रेमी-हृदय को नवीन सात्त्विक ज्योति से प्रकाशित कर देने के सामर्थ्य से युक्त माना है। वे उसे कामुकता या वासना के पर्याय-रूप में स्वीकृति नहीं दे पाए। प्रेम, त्याग, सेवा और समर्पण से युक्त प्रेम ही उनका काम्य रहा। प्रतिकार, प्रतिशोध, हिंसा, दुराग्रह या अनुबन्धित प्रेम को वे प्रेम नहीं मानते थे।[1] 'विश्वास' कहानी की चरितनायिका मिस जोशी तथा 'दो सखियाँ' की चन्दा प्रेम को प्रतिकार तथा दुराग्रह से मुक्त आत्मोन्नति का प्रेरक मानती हैं।

प्रेमचन्द की नारी-केन्द्रित कहानियों में प्रेम के उज्ज्वल पक्ष के साथ-साथ उसके वासनायुक्त रूप का भी यथेष्ट चित्रण मिलता है। यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्रस्तुत अध्याय में उनकी नायिकाओं के विवाह-पूर्व प्रेम का ही विवेचन अभीप्सित रहा है तथा अध्ययन की सुगमता के लिए उसे आदर्श और विकृत प्रेम-वर्गों में रखकर विश्लेषित किया गया है। उक्त दोनों रूपों का निर्धारण सामाजिक-नैतिक मान्यताओं द्वारा होता है, अतः प्रेम-सम्बन्धों के चित्रण में प्रेमचन्द ने जहाँ मानवीय गुणों के नियामक रूप में सामाजिक-नैतिक प्रतिबन्धों एवं वर्जनाओं को स्वीकृति दी है, वहीं मनोवैज्ञानिक स्तर पर इनकी अभिव्यक्ति को यथार्थ और आदर्श दोनों से संवलित किया है।

1. प्रेम का आदर्श रूप

नारी के प्रेमिका-रूप पर आधारित प्रेमचन्द की कहानियों की संख्या सैंतीस है जिनमें प्रेमिकाओं के माध्यम से प्रेम के विविध पक्षों तथा उनमें निहित सम्भावनाओं को उद्घाटित किया गया है। आदर्श प्रेम के गुणों में जिन पर अधिक बल दिया गया है वे हैं— (अ) एकनिष्ठता, (आ) त्याग, सेवा और कर्त्तव्यनिष्ठा, (इ) समाज-भय से आक्रान्त मांगलिक रूप।

(अ) एकनिष्ठता : प्रेमचन्द की 'ज्योति', 'त्यागी का प्रेम', 'मर्यादा की वेदी', 'धोखा', 'स्मृति का पुजारी', 'लैला' आदि कहानियों की चरितनायिकाएँ अपने प्रेमियों के प्रति एकनिष्ठ रहती हैं तथा उनके लिए सर्वस्व बलिदान करने के लिए भी तत्पर

---

1. (अ) "जहाँ एक बार प्रेम ने वास किया हो वहाँ उदासीनता और विराग चाहें पैदा हो जाएँ, हिंसा का भाव नहीं पैदा हो सकता।"—ग़बन, पृष्ठ 299
(आ) "मैं प्रेम को सन्देह से ऊपर समझती हूँ। यह देह की वस्तु नहीं, आत्मा की वस्तु है।···वह पूर्ण आत्मसमर्पण है।"—गोदान, पृष्ठ 408-409

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रहती हैं। इनमें से कुछ का प्रेम सामाजिक स्वीकृति पाकर दाम्पत्य के रूप में परिणत हो जाता है, कुछ को किन्हीं सामाजिक, नैतिक कारणों या आदर्शों से प्रेमी के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति का वरण करना पड़ता है तथा कुछ के प्रेम को सामाजिक रूढ़ियों, परम्पराओं, मान्यताओं, वैयक्तिक दौर्बल्य के कारण सामाजिक स्वीकृति नहीं मिलती और उन्हें पूरे जीवन दुःख भोगना पड़ता है। इनमें से अधिकांश की नियति आत्मघात रहती है। लेखक ने इनके माध्यम से प्रेम के आदर्श स्वरूप की महत्ता व्यक्त की है।

'ज्योति' की रूपिया कहानी की प्रधान पात्र न होने पर भी प्रेमाकर्षण की प्रारम्भिक अवस्था की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। मोहन के प्रति उसका प्रेम सहज रूपाकर्षण से प्रारम्भ होकर निश्छल और विश्वस्त प्रेम में बदल जाता है। प्रारम्भ में उनके प्रेम-सम्बन्ध को स्वीकार न करने वाली मोहन की माँ भी अन्त में उसमें त्याग, ममत्व, कर्त्तव्यनिष्ठा की सुगन्धि पा उसे पुत्रवधू के रूप में स्वीकार कर लेती हैं।

'त्यागी का प्रेम' की गुजराती नायिका आनन्दीबाई लाला गोपीनाथ से सच्चा प्रेम करती है। वह प्रेम पर अपनी आत्मा को भी निछावर करने के लिए तैयार है, किन्तु गोपीनाथ नाम के पीछे मरते हैं। वे आनन्दीबाई के गर्भवती होते ही उसे अन्यत्र चले जाने की सम्मति देते हैं, किन्तु शारीरिक क्षीणता के कारण आनन्दीबाई अकस्मात् सतमासे शिशु को जन्म देती है तो वे लोकापवाद से बचने के लिए उसके यहाँ जाना बन्द कर देते हैं। नौकरी से निकाले जाने पर आनन्दीबाई को घोर अर्थाभाव तथा शारीरिक-मानसिक यन्त्रणा भोगनी पड़ती है, किन्तु गोपीनाथ के प्रति उसके मन में किसी प्रकार की विरक्ति या दुर्भावना नहीं आती। अन्त में गोपीनाथ ही उसके पास जाते हैं और स्वीकार करते हैं कि "अब मुझे विदित हो गया कि मेरी सारी दार्शनिकता केवल हाथी का दाँत थी। मुझमें क्रियाशक्ति नहीं है, लेकिन इसके साथ ही तुमसे अलग रहना मेरे लिए असह्य है। तुमसे दूर रहकर मैं ज़िन्दा नहीं रह सकता, प्यारे बच्चे को देखने के लिए मैं कितनी ही बार लालायित हो गया हूँ, पर यह आशा कैसे करूँ कि मेरी चरित्रहीनता का ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाण पाने के बाद तुम्हें मुझसे घृणा न हो गई होगी।"[1] आनन्दीबाई के प्रेम का आधार गोपीनाथ का उपकार और कार्य में निरन्तर साहचर्य दोनों रहा है। इस प्रकार का प्रेम बहुधा विवाह में परिणत न होने पर भी अडिग बना रहता है।[2]

---

1. मानसरोवर, भाग 6, पृष्ठ 38
2. "सच्चे प्रेम का कमल बहुधा कृपा के प्रभाव से खिल जाया करता है। जहाँ रूप, यौवन, सम्पत्ति और प्रभुता तथा स्वाभाविक सौजन्य प्रेम का बीज बोने में अकृतकार्य रहते हैं, वहाँ प्राय: उपकार का जादू चल जाता है। कोई हृदय ऐसा वज्र और कठोर नहीं हो सकता जो सत्य-सेवा से द्रवीभूत न हो जाए।"—प्रेमचन्द : वरदान, पृष्ठ 85

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रेमचन्द ने कुछ ऐसे नारी चरित्रों का भी नियोजन किया है जो कौमार्यावस्था में जाने-अनजाने किसी को हृदय समर्पित कर देती हैं, किन्तु मर्यादा, लोकलाज, प्रतिष्ठा अथवा अन्य कारणों से उन्हें किसी अन्य पुरुष का वरण करना पड़ता है। ऐसी परिणय-प्रशमित नायिकाएँ भी अपने प्रेम में अपूर्व एकनिष्ठा का परिचय देती हैं। उनके पूर्व-प्रेम का आलोक उनके त्याग, श्रद्धा, कर्त्तव्य आदि भावों को निरन्तर आभासित करता है। वे सम्पूर्ण कर्त्तव्यभावना को पति के प्रति समर्पित कर देती हैं तथा उससे आगे जाना कल्याणकर नहीं समझतीं। झालावाड़-कुमारी प्रभा (मर्यादा की वेदी) मन्दार कुमार से प्रेम करती है, किन्तु उनके विवाह-सूत्र में आबद्ध होने से पूर्व चित्तौड़ के राणा भोजराज उसका अपहरण कर लेते हैं। निरपराध प्रजा का रक्तपात न होने देने के लिए यद्यपि प्रभा भोजराज के साथ चली जाती है, किन्तु आत्मिक रूप से उन्हें पति के रूप में स्वीकार नहीं कर पाती। जब मन्दार कुमार छद्म वेश में युवा संन्यासी के रूप में उसके भवन में पहुँच उससे साथ चलने का अनुरोध करता है तो उसका मर्यादा-भाव जाग्रत हो उठता है। वह कहती है—"लोकनिंदा भी तो कोई चीज़ है। संसार की दृष्टि में मैं चित्तौड़ की रानी हो चुकी। अब राणा जिस भाँति रखें उसी भाँति रहूँगी। मैं अन्त समय तक उनसे घृणा करूँगी, जलूँगी, कुढ़ूँगी। जब जलन न सही जाएगी तो विष खा लूँगी या छाती में कटार मारकर मर जाऊँगी, लेकिन इसी भवन में। इस घर के बाहर कदापि पैर न रखूँगी।"[1] मन्दार कुमार को राणा से बचाते हुए वह उनकी तलवार का प्रहार अपने ऊपर ले लेती है।

'धोखा' कहानी की नायिका को भी अपने प्रेमी के बजाय अन्य पुरुष का वरण करना पड़ता है, किन्तु उसकी स्थिति प्रभा से भिन्न है। वह नौगढ़ के शिक्षित, युवा राजा हरिश्चन्द्र की वाग्दत्ता है। आधुनिक विचारधारा वाले राजा जब किसी प्रकार भी अपनी भावी पत्नी से भेंट नहीं कर पाते तो हारकर एक युवा योगी गवैये का रूप धारण करते हैं। अपनी पत्नी के संगीत-प्रेम से अवगत होने के कारण वे उसे अपने गले और मोहिनी द्वारा मोह लेते हैं। जैसे-जैसे विवाह की तिथि समीप आती है नायिका की मानसिक चिन्ता और उद्विग्नता बढ़ती जाती है। विवाहोपरान्त वह पति के प्रति पूर्ण विश्वस्त रहते हुए भी मानसिक रूप से अशान्त रहती है। इसी स्थिति में पति की चित्रशाला में उसी युवा योगी का चित्र देखकर खिन्न होने पर पति द्वारा पूछने पर अपने पूर्व प्रेम की कथा सच-सच बता देती है। राजा हरिश्चन्द्र कुछ समय पश्चात् पुनः योगी-वेश में उसके सम्मुख प्रस्तुत हो उसके भ्रम का निवारण कर देते हैं।

एकनिष्ठ होते हुए भी कुछ प्रेमिकाएँ अपने प्रेम-पात्र के साथ दाम्पत्य सुख नहीं भोग पातीं। 'कामना तरु' की नायिका चन्दा का प्रेम देश, काल, व्यक्ति और यहाँ तक

---

1. मानसरोवर, भाग 6, पृष्ठ 95

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कि मृत्यु से भी परे चिरन्तन और दैवी है। उसका प्रेम विश्वास की सुदृढ़ भित्ति पर अवस्थित है, अतः उसमें किसी प्रकार का शैथिल्य आने का प्रश्न हो नहीं उठता। राजा इन्द्रनाथ की मृत्यु के पश्चात् आन्तरिक संघर्षों के कारण भागे कुँवर राजनाथ का प्रेम अपने पुराने सेवक और शरणदाता ज़मींदार कुबेरसिंह की पुत्री चम्पा से हो जाता है। दोनों अपने प्रेम के प्रतीकस्वरूप एक पौधा 'कामना तरु' लगाते और जीवन-पर्यन्त एक साथ रहने का संकल्प करते हैं। कुबेरसिंह उनको दाम्पत्य सूत्र में बाँध पाता इससे पूर्व ही कुँवर का अपहरण कर लिया जाता है तथा उसकी रक्षा के लिए जूझता कुबेर मारा जाता है। निःसहाय चन्दा वियोग के दस वर्ष काट अपूर्ण मनोकामना लिए उसी कामना-तरु के नीचे चिर-निद्रा में सो जाती है। कुछ माह पश्चात् वह चिड़िया बनकर कुँवर की चारपाई के बान से उसी वृक्ष पर अपना नीड़ बनाती है, क्योंकि उसे विश्वास था कि कुँवर अवश्य लौटेंगे। वह अन्य पक्षियों से भिन्न है और रात-भर डाल पर बैठ विरह-गीत गाती है। बीस वर्ष पश्चात् जब कुँवर किसी प्रकार कारागार से भागकर अपने कामना-तीर्थ में पहुँचता है तो चन्दा को न पा विक्षिप्त हो उठता है। एक ग्रामीण द्वारा उसे चन्दा के प्रेम की उत्कटता का ज्ञान होता है—"दिन-दिन घुलती जाती थी। तुम्हें विश्वास न आयेगा भाई, उसने दस साल इसी तरह काट दिए। इतनी दुर्बल हो गई थी कि पहचानी न जाती थी पर अब भी उसे कुँवर साहब के आने की आशा बनी हुई थी। आखिर एक दिन इसी वृक्ष के नीचे उसकी लाश मिली। ऐसा प्रेम और कौन करेगा, भाई! कुँवर न जाने मरे कि जीए; कभी उन्हें इस विरहिणी की याद भी आती है कि नहीं पर इसने तो प्रेम को ऐसा निभाया जैसा चाहिए।"[1]

'स्मृति का पुजारी' की मिस इन्दिरा पचासवर्षीय विधुर होरीलाल से प्रेम करती हैं। वह बालिकाओं के हाई स्कूल की हेडमिस्ट्रेस हैं तथा होरीलाल की सहयोग-भावना से प्रभावित होती हैं। नित्य प्रातः भ्रमण में होने वाली भेंट उनके आकर्षण को तीव्र करती है। वह होरीलाल के अस्त-व्यस्त घर को ही व्यवस्थित नहीं करती, बल्कि स्वयं को समर्पित कर उनके जीवन को भी व्यवस्थित करने की इच्छा से विवाह-प्रस्ताव भी रखती है—"मैं आपकी कुछ सेवा कर सकती हूँ तो मैं हर तरह हाज़िर हूँ, मुझे आपसे जो भक्ति और प्रेम है, वह इसी रूप में चरितार्थ हो सकता है।"[2] मृत पत्नी की स्मृति को अधिक महत्त्व देने वाले होरीलाल उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर देते हैं तब भी वह विचलित नहीं होती और "जब आपको कोई कष्ट हो और आप मेरी जरूरत समझें तो मुझे बुला लीजियेगा"[3] कहकर चली जाती है। उसकी दृष्टि में प्रेमी की इच्छा ही सर्वोपरि रहती है।

---

1. मानसरोवर, भाग 5, पृष्ठ 63
2-3. मानसरोवर, भाग 4, पृष्ठ क्रमशः 255, 256

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

'लैला' कहानी की चरितनायिका लैला प्रेम के अमरत्व में विश्वास रखनेवाली आदर्श प्रेमिका है। उसकी दृष्टि में बादशाहत एक नश्वर तत्त्व है, किन्तु प्रेम अनश्वर और सत्य तत्त्व है। प्रेम की महिमा और श्रेष्ठता अतुलनीय और अपराजेय थी। तदनुरूप वह प्रेम की तुलना में अन्य सभी वस्तुओं को गौण और उपेक्षणीय मानती है। डफ बजाकर; जनकल्याण के गीत गाती इस प्रेम की देवी को ईरानी जनता का पूर्ण प्रेम और श्रद्धा प्राप्त है। उसके सौन्दर्य और गीत पर मुग्ध ईरान का शासक उससे विवाह कर अपनी मलिका बना लेता है। लैला भी प्रेम के इस सच्चे पुजारी के सम्मुख सहज समर्पण कर देती है। यद्यपि जनता प्रारंभ में उसे प्रशासिका-रूप में पाकर प्रसन्न होती है, किन्तु शीघ्र ही जनता का राज्य स्थापित करने के लिए प्रजा भयानक विद्रोह करती है और लैला के निष्कासन की माँग करती है। उसका पति भी राजसत्ता का परित्याग कर उसके साथ महल त्याग देता है, किन्तु एक वृद्ध द्वारा अपने प्रेमोन्माद की आलोचना सुन द्वन्द्व-ग्रस्त हो उसकी उपेक्षा करने लगता है। वैसे, उसका अन्तिम निर्णय है : "लैला मेरी है, मैं लैला का हूँ। न मैं उससे अलग, न वह मुझसे जुदा।...बादशाहत नश्वर है, प्रेम अमर है।"[1] तथापि लैला को तो अपने प्रेम की क्षण-भर भी उपेक्षा सह्य नहीं थी। अत: वह उसके निर्णय को जाने बिना ही उसके नाम एक पत्र लिखकर वहाँ से चली जाती है। इस आदर्श एकनिष्ठ प्रेमिका का प्रेम परिस्थितिजन्य भ्रमों के कारण विफल रहता है। उसका प्रेम अपनी पीड़ा-प्रसूत व्यापकता के कारण प्राचीरों में बद्ध नहीं किया जा सकता, हाँ सबकी सहानुभूति अवश्य खींच लेता है।

प्रेमचन्द की ये प्रेमिकाएँ अपने प्रेम की शक्ति से अपने प्रेमपात्र को भी उच्च भावनाओं से भर देती हैं। उनका प्रेम प्रेमियों के लिए आध्यात्मिक भोजन का कार्य करता है तथा कर्त्तव्य-पथ पर चलते समय डगमगाने नहीं देता। 'आहुति' की रूपमणि अपने सहपाठी विशम्भर से प्रेम करती है। वह उसे स्वतंत्रता-आन्दोलन तथा किसान-आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के लिए प्रोत्साहित ही नहीं करती, बल्कि स्वयं भी उसका अनुगमन करती है। समस्त भोगविलास त्याग कर खद्दर पहनती है, सूत कातती है तथा कांग्रेस की गतिविधियों को आगे बढ़ाने में सहयोग देती है। विशम्भर के गिरफ्तार होने पर संकल्प करती है कि "विशम्भर ने जो दीपक जलाया है, वह मेरे जीते-जी बुझने न पाएगा।"[2]

'तथ्य' कहानी की पूर्णिमा अपने शैशव के सखा अमृत के प्रेम-भाव को ठीक-ठीक न समझ सकने के कारण अभिभावकों द्वारा तय किए गए सम्बन्ध को स्वीकार कर लेती है तथा खिन्न और क्षुब्ध अमृत को भी संयम और धैर्य रखने की प्रेरणा देती

---

1. मानसरोवर, भाग 3, पृष्ठ 146
2. कफ़न और शेष रचनाएँ, पृष्ठ 102

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

है। उसकी प्रेरणा से अमृत उसके विवाह में जी-तोड़ परिश्रम करता है, स्वयं भी अवसर आने पर विवाह करता है तथा पूर्णिमा के बच्चे से निष्कपट स्नेह करता है। वह उसके माता-पिता का अन्तिम संस्कार भी पुत्रवत् करता है और हर वर्ष नाई भेजकर उसकी कुशल-मंगल का समाचार मँगाता है। पूर्णिमा पति की मृत्यु के पश्चात् अपने तीन बच्चों सहित जिस संयम और धैर्य से जीवन व्यतीत करती है उसे देखकर अमृत श्रद्धाभिभूत हो उठता है—"इस तपस्विनी को हम जैसे स्वार्थी लोग कैसे समझा सकते हैं मौसी? हम लोगों का कर्त्तव्य इसके चरणों पर सिर झुकाना है, इसे समझाना नहीं।"[1] पूर्णिमा अमृत को वासना-मुक्त कर त्यागी, संयमी और धैर्यवान् बनाती है।

'शोक का पुरस्कार' की लीला अपने प्रेमी कथानायक को पति के कर्त्तव्यों का ज्ञान कराती है। नारी होने के कारण वह नारी की पीड़ा को भली-भाँति समझती है और इसलिए जब कथानायक अपनी अनपढ़ पत्नी कुमुदिनी को त्याग कर, ईसाई-धर्म अपनाने और लीला से विवाह करने का विचार करता है तो वह बिना सूचना दिए शिमला चली जाती है और वहाँ से पहले अपनी बीमारी और फिर मृत्यु का झूठा तार कथानायक को भिजवा देती है। वह कुमुदिनी को मेहरसिंह के छद्मवेश में उसके पास भेजती है। अन्त में रहस्योद्घाटन होने पर कथानायक लज्जित हो अपनी पत्नी को अपना लेता है। लेखक ने स्पष्ट कर दिया है कि यदि एक नारी दूसरी नारी की पीड़ा को समझे तो अनेक घर उजड़ने से बच सकते हैं।

'दिल की रानी' कहानी की चरितनायिका उम्मतुल हबीब तैमूर की प्रेमिका है। वह पुरुष सैनिक के वेश में उसके साथ रहती है। उसके साहस, इस्लाम-प्रेम और उच्च विचारों से प्रभावित हो तैमूर उसे अपना वज़ीर बना लेता है तथा स्वयं भी अत्याचार, अन्याय और हिंसा का मार्ग त्याग देता है। यद्यपि उम्मतुल को पता नहीं था, किन्तु तैमूर को ज्ञात था कि वह युवती है, अतः वह उससे विवाह कर उसे अपने मुल्क की ही नहीं, दिल की भी रानी बना लेता है।

(आ) त्याग, सेवा और कर्त्तव्यनिष्ठा : निःस्वार्थ त्याग और बलिदान आदर्श प्रेम की अपरिहार्य अर्हताएँ हैं। इनसे युक्त नारियाँ चाहे सफल रहें अथवा विफल किन्तु उन्हें एक प्रकार का आत्मिक तोष अवश्य प्राप्त होता है और वही उनकी दृष्टि में सर्वाधिक अमूल्य होता है। 'हार की जीत' कहानी की नायिका लज्जावती प्रेम को दायित्वपूर्ण सम्बन्ध मानती है और इसलिए सहपाठी केशव के प्रति अपने प्रेम को विकसित न होने देकर पिता द्वारा चुने गए वर शारदाचरण का वरण करने का निश्चय करती है। विवाह से पूर्व वह उससे भी किसी प्रकार का शारीरिक सम्बन्ध नहीं रखती और अपने अभीप्सित आदर्श तक पहुँचने के लिए निरन्तर प्रेरित और प्रोत्साहित करती रहती है। आदर्श की प्राप्ति शारदाचरण

---

1. कफ़न और शेष रचनाएँ, पृष्ठ 77

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

को पथभ्रष्ट कर देती है। वह दीवान की सुन्दरी पुत्री सुशीला के प्रेमाकर्षण में फँस किसी गुप्त असाध्य रोग से ग्रस्त होने का बहाना कर लज्जा से अपने विवाह की तिथि को टालता जाता है। उसकी बीमारी की सूचना पाकर लज्जा विवाह की सामाजिक औपचारिकताएँ पूर्ण किए बिना ही उसके पास जाने का निश्चय कर लेती है—"सावित्री ने क्या सब कुछ जानते हुए भी सत्यवान से विवाह नहीं किया था? फिर मैं क्यों न करूँ? अपने कर्त्तव्य-मार्ग से क्यों डिगूँ? मैं उनके लिए व्रत रखूँगी, तीर्थ करूँगी, तपस्या करूँगी। भय मुझे उनसे अलग नहीं कर सकता।"[1] वह तन, मन, धन से उसकी सेवा करती है। सुशीला के प्रति उसकी अनुरक्ति का ज्ञान उसे अन्दर-ही-अन्दर तोड़ देता है। वह उसके प्रति प्रतिशोध-भाव से भर उठती है, किन्तु शीघ्र ही त्याग करने का निश्चय करती है। उसकी अनुपम सेवा-वृत्ति, त्याग और बलिदान से प्रभावित सुशीला स्वत: उसके मार्ग से हट जाती है तथा शारदाचरण को भी कहना पड़ता है—"क्षमा करो, तुम्हारी उदारता की दूसरी बार परीक्षा नहीं लेना चाहता।"[2]

'सांसारिक प्रेम और देश प्रेम' कहानी की चरितनायिका मैण्डलीन प्रसिद्ध इतालवी देशभक्त जोज़ेफ मैनिली से प्रेम करती है। वह उसके साथ मुसीबतें उठाने, भूखी मरने के लिए तैयार है, किन्तु उससे अलग नहीं रहना चाहती। देश को समर्पित जोज़ेफ उसे प्रेमिका के रूप में नहीं, अपितु बहन के रूप में स्वीकार करता है। वह अपने मित्रों को भेजकर उसके सामने अपनी अत्यन्त निकृष्ट छवि प्रस्तुत करवाता है जिससे वह विरक्त हो जाए। प्रेम में पागल मैण्डलीन स्विट्ज़रलैण्ड छोड़कर इटली जाती है और वहाँ एक सराय में रहते हुए रोम के जनराज्य की स्थापना में लगे जोज़ेफ को दूर से देखती रहती है। जब मित्रों के विश्वासघात और फ्रांस की निरंकुशता के कारण जोज़ेफ अपने उद्देश्य में असफल होता है तो वह उसके सम्मुख आ पुन: प्रणय-याचना करती है। जोज़ेफ उसके प्रेम की गहनता को न समझ पाने की अपनी कमी के लिए क्षमा-याचना करता है, किन्तु पत्नी-रूप में उसे अपनाने से पूर्व देश के आह्वान पर इंगलिस्तान चला जाता है, गिरफ़्तार होता है, बीमार होकर छूटता है, किन्तु लन्दन जाते समय मृत्यु को प्राप्त होता है। मैण्डलीन सुहागिन के वेश में उसकी कब्र पर पुष्पांजलि चढ़ाती है तथा अपने घर को उसके नाम पर आश्रम में बदल देती है जिसमें निस्सहाय नारियों और अनाथ बालकों को शरण मिलती थी। तीन वर्ष बाद मृत्यु हो जाने पर उसकी इच्छानुसार उसे उसी आश्रम में दफना दिया जाता है। प्रेमचन्द ने उसके प्रेम-भाव को गोपियों के प्रेम-भाव के समान परम पवित्र और उदात्त माना है। उसका प्रेम एकपक्षीय होते हुए भी अनुकरणीय था।

---

1. मानसरोवर, भाग 8, पृष्ठ 141
2. वही, पृष्ठ 146-147

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

'एक्ट्रेस' की पैंतीसवर्षीय नायिका तारा देवी को प्रेम का कटु अनुभव बाज़ारू स्त्री बना देता है, किन्तु जब उसके उत्कृष्ट अभिनय पर रीझ कुँवर निर्मलकान्त उससे प्रणय-याचना करते हैं तो वह भी उनके निश्छल प्रेम के प्रति उदासीन नहीं रह पाती । वह उनसे विवाह कर सम्मानित गृहलक्ष्मी का जीवन व्यतीत करने के लिए लालायित हो उठती है। निर्मलकान्त द्वारा विवाह की तिथि निश्चित किए जाते ही वह तीव्र द्वन्द्व में ग्रस्त हो जाती है। कृत्रिम सौन्दर्य-प्रसाधनों द्वारा उत्पन्न किए गए क्षणिक सौन्दर्य से वह उन्हें ठगना उचित नहीं समझती और उनके नाम एक पत्र लिखकर घर छोड़ देती है। वह अपने पत्र में यह स्पष्ट कर देती है कि 'प्रेम की स्मृति में प्रेम के भोग से कहीं अधिक माधुर्य और आनन्द है'। वह निर्मलकान्त के अपने सदृश किसी योग्य कन्या से विवाह कर लेने पर पुन: लौटने का आश्वासन भी देती है। उसमें प्रेमी के प्रति रूपाकर्षण और दाम्पत्य सुख की लालसा है, रागात्मक सम्बन्धों की गहनता को भी वह पहचानती है किन्तु स्वयं को अयोग्य समझ त्याग का मार्ग अपनाती है। उसका प्रेम शरीर से प्रारम्भ होकर आत्मा तक पहुँचता है किन्तु उसके त्याग में से विवशता की गंध आती है।

'रहस्य' कहानी की मंजुला पति से वैचारिक मतभेद के कारण उन्हें छोड़कर नारी सेवाश्रम में नौकरी करती है तथा उसके संचालक विमल की निःस्वार्थ सेवा, त्याग और उदारता से प्रभावित हो उससे प्रेम करने लगती है। विमल के निरन्तर दूर रहने के प्रयास से वह उससे खिन्न होती है। किन्तु जब विमल उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करता है तो उसमें छिपा प्रेम-भाव उसे तीव्र द्वन्द्व में ढकेल देता है। वह उसे देवत्व के उच्चासन से गिराना नहीं चाहती, अत: उसे छोड़कर चली जाती है। लेखक ने ऐसी प्रेमिकाओं को अन्ततः विफल, दु:खी अथवा पतित दिखाकर यह स्पष्ट कर दिया है कि उन्हें प्रेम का यह रूप भी ग्राह्य नहीं था। अभीप्सित आदर्श की स्थापना के लिए वह आकस्मिक घटनाओं का नियोजन कर सारे कथा-प्रवाह को प्रतिकूल दिशा में मोड़ देते हैं।

'विश्वास' कहानी में 'बम्बई के सभ्य समाज की राधिका' तथा प्रान्तीय गवर्नर मिस्टर जौहरी की प्राणप्रिया मिस जोशी सौन्दर्य के साथ ही ऐश्वर्य की भी स्वामिनी हैं। समाज-सेवक आप्टे जब एक भाषण में उनके और जौहरी के अनर्गल सम्बन्धों को उजागर कर देते हैं तो मि. जौहरी उन्हें गिरफ़्तार करवा देते हैं पर मिस जोशी के अनुरोध पर छोड़ देते हैं। मिस जोशी आप्टे के सहज, निष्कपट व्यवहार से इतनी प्रभावित होती हैं कि जौहरी के साथ अपने स्वच्छंद प्रेम को त्याग देती हैं। उनके अनुरोध पर आप्टे उन पर चरित्रभ्रष्ट होने का आरोप लगाने पर क्षमा माँग लेते हैं। वह जौहरी के विरोध करने पर स्पष्ट कह देती हैं कि "वह मेरे स्वामी हैं, मैं उनको अपना स्वामी समझती हूँ।"[1] वे अपना सांसारिक वैभव त्याग आप्टे के पवित्र प्रेम में डूब जाती हैं।

1. मानसरोवर, भाग 3, पृष्ठ 29

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उनके प्रेम का आधार विश्वास है,अत: उसमें किसी प्रकार का विचलन नहीं मिलता।

(इ) समाज-भय से आक्रान्त मांगलिक रूप : प्रेम की चरम सीमा त्याग और बलिदान है, पर उसकी प्राप्ति का सफल और उचित माध्यम विवाह ही है। जिस प्रेम को सामाजिक स्वीकृति नहीं मिलती, वह अन्ततः विफल और दुःखदायी सिद्ध होता है। जाति अथवा स्तर-भेद, पुरुष में दृढ़ता का अभाव और स्वार्थपरता, नारी की दमित असंतोष-वृत्ति भी ऐसे प्रेम में व्याघात उत्पन्न करती है तथा प्रेमिकाओं को अपनी समस्त एकनिष्ठता, त्याग और सहिष्णुता के पुरस्कार स्वरूप मिलता है आत्मघात। 'कायर' की वैश्य-कन्या प्रेमा अपने ब्राह्मण सहपाठी केशव से प्रेम करती है किन्तु पहले अपने और बाद में केशव के रूढ़िवादी अभिभावकों के विरोध के कारण असफल रहती है। केवल मित्रवत् सम्बन्ध बनाए रखना केशव को स्वीकार नहीं था। प्रारम्भ में केशव का परिचय देते हुए प्रेमचन्द कहते हैं, "केशव नए विचारों का युवक था, जात-पाँत के बन्धनों का विरोधी···ब्राह्मण होकर भी वैश्य-कन्या प्रेमा से विवाह करके अपना जीवन सार्थक बनाना चाहता था। उसे अपने माता-पिता की परवाह न थी। कुल मर्यादा का विचार भी उसे स्वाँग-सा लगता था।"[1] बाद में वही केशव पिता द्वारा सम्पत्ति से वंचित किए जाने की धमकी देते ही इस प्रकार बदल जाता है जैसे "कोई कायर सिपाही बन्दूक के सामने जाकर हिम्मत खो बैठता है और क़दम पीछे हटा लेता है। वह साधारण युवकों की तरह सिद्धान्तों के लिए बड़े-बड़े तर्क कर सकता था, ज़बान से उसमें अपनी भक्ति की दोहाई दे सकता था लेकिन उसके लिए यातनाएँ झेलने का सामर्थ्य उसमें न था।"[2] प्रेमा, जो प्रेमहीन विवाह को केवल घृणित व्यापार मानती थी, केशव के इस विश्वासघात से टूट जाती है और आत्महत्या कर लेती है। जातीयता उनके प्रेम को विवाह में परिणत नहीं होने देती।

'आगा-पीछा' कहानी की चरितनायिका वेश्या-पुत्री श्रद्धा है। माता कोकिला की दुर्दशा से अवगत होने के कारण वह उच्च शिक्षा प्राप्त कर हर प्रकार से योग्य बनती है। उसे पुरुष जाति से घृणा है किन्तु चमार भगतराम में अपने आदर्श पुरुष को पाकर उसके हृदय में प्रेम की मधुर भावना का स्फुरण होने लगता है। धीरे-धीरे श्रद्धा और सम्मान का भाव प्रगाढ़ प्रेम में परिणत हो जाता है और दोनों दाम्पत्य सूत्र में आबद्ध होने के लिए वचनबद्ध होते हैं। प्रारम्भ में भगतराम के माता-पिता एक वेश्या-पुत्री को अपनी पुत्रवधू बनाने के लिए तैयार नहीं होते। उनके अनुसार, "रंडी की बेटी चाहे इन्नर की परी हो, तो भी रंडी की बेटी है।"[3] जब श्रद्धा की विनम्रता, शील और

---

1. मानसरोवर, भाग 1, पृष्ठ 188
2. वही, पृष्ठ 195
3. मानसरोवर, भाग 4, पृष्ठ 104

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सेवा-भाव उन्हें मोह लेता है तो भगतराम का बनावटी प्रेम ठंडा पड़ चुकता है। वह विवाह से पूर्व आगा-पीछा सोच-सोच कर उन्मादग्रस्त हो जाता है। मृत्यु से पूर्व वह स्वीकार करता है कि "लेकिन मुझे रह-रहकर यह भ्रम होता था; क्या तुम खून के असर का नाश कर सकती हो? क्या तुम एक ही बार अपनी परम्परा की रीति को छोड़ सकोगी।"[1] किन्तु मृत्यु उसे अपनी भूल का प्रायश्चित्त करने का अवसर ही नहीं देती, परिणामतः श्रद्धा भी "अपना जीवन प्रेम की उस निठुर वेदी पर उत्सर्ग करने के लिए तैयार हो गई, जिस पर लैला और मजनूँ शीरीं और फरहाद—एक नहीं हज़ारों ने अपनी बलि चढ़ा दी।"[2] यद्यपि श्रद्धा का प्रेम एकनिष्ठ था, त्याग और उत्सर्ग से पूर्ण था जिसमें धर्म अथवा बाह्य उपकरण व्याघात नहीं डाल सकते थे तथापि भगतराम में अपेक्षित साहस और मनोबल का अभाव उनके प्रेम को सफल नहीं होने देता।

प्रेमचन्द की एक अन्य कहानी 'प्रेम की होली' में भी ठाकुर गरीबसिंह युवती विधवा गंगी से प्रेम करते हुए भी झूठी प्रतिष्ठा के मोह में उसे रूढ़िवादी ग्रामीण समाज के सम्मुख प्रकट करने का मनोबल नहीं जुटा पाते और रुग्ण हो प्राण त्याग देते हैं। उनकी चिता के साथ ही गंगी के अरमानों की भी होली जल जाती है। यह ध्यातव्य है कि प्रेमचन्द की ऐसी कहानियों का अन्त नायक-नायिका दोनों अथवा किसी एक की मृत्यु के साथ होता है। ऐसा उन्होंने असामाजिक प्रेम की विफलता प्रकट करने के लिए ही किया है। कालान्तर में उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन आया तो उन्होंने 'सौभाग्य के कोड़े' कहानी में भंगी नथुआ को न. रा. आचार्य बनाकर राय भोलानाथ की पुत्री रत्ना का उससे विवाह कराया है। रत्ना प्रेम को जाति ने ऊँचा समझती है। वह बाल्यकाल में अछूत नथुआ के प्रति दया-भाव के रूप में उपजे प्रेम को यौवनावस्था में शुद्ध प्रेम के रूप में पहचान चुकी थी, अतः उससे विवाह कर अपने प्रगतिशील विचारों का परिचय देने के साथ ही पिता द्वारा निम्न अछूत वर्ग पर ढाए ज़ुल्मों का प्रायश्चित्त भी कर लेती है। विवाहोपरान्त भी हीनता की ग्रन्थि से उसे सामान्य होता न पाकर वह कहती है— "खूब जानती हूँ। बहुत दिनों से जानती हूँ। जब हम-तुम दोनों इसी बगीचे में खेला करते थे, मैं तुमको मारती थी और तुम रोते थे, मैं तुमको अपनी जूठी मिठाइयाँ देती थी और तुम दौड़ कर लेते थे, तब भी मुझे तुमसे प्रेम था; हाँ वह दया के रूप में व्यक्त होता था।"[3]

प्रेमचन्द विवाह में वर-कन्या के लिए समान स्तर का होना अनिवार्य समझते थे जिससे किसी में भी हीनता का भाव न आए। इसके साथ ही वे मात्र बाह्य रूप की अपेक्षा गुणों को देखना अधिक उचित मानते थे। संभवतः इसीलिए उन्होंने नथुआ को

---

1. मानसरोवर, भाग 4, पृष्ठ 109
2. वही, पृष्ठ 112
3. वही, भाग 3, पृष्ठ 196

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

न. रा. आचार्य बनाकर निम्न वर्ग से उच्च ब्राह्मण वर्ग में ही नहीं पहुँचा दिया बल्कि उसे विदेश भेज कर अतुल समृद्धि और कीर्ति से मंडित कर दिया। संतुलन और सामंजस्य को बनाए रखने के लिए उन्होंने राय भोलानाथ की कोठी बिकवाकर उन्हें नथुआ के समकक्ष स्थापित कर दिया। यह कहानी प्रेम की समस्या की अपेक्षा अवर्ण-सवर्ण के प्रश्न से अधिक सम्बद्ध है, अतः रत्ना का चरित्र अधिक उभार नहीं पा सका है।

'जादू' कहानी में मीना तथा नीला दो बहनें एक ही कुटिल, बहुरूपिये युवक के प्रेम में फँस जाती हैं। वह उन दोनों से ही प्रेम का स्वाँग रचाकर अपना उल्लू सीधा करता है। नीला उसका प्रथम आखेट बनी अतः वह मीना को उस मार्ग पर आगे नहीं बढ़ने देना चाहती। प्रारम्भ में नीला को ईर्ष्या और प्रतिकार से प्रेरित समझकर मीना उसे तिरस्कृत करती है किन्तु अन्त में वस्तु-स्थिति के स्पष्ट होने पर चिन्तित और दुखी होती है। कहानी संवाद-शैली का सुन्दर निदर्शन प्रस्तुत करती है। रक्त-सम्बन्धों की प्रगाढ़ता को व्यक्त करने के साथ ही लेखक ने बहनों को प्रेम-क्षेत्र का प्रतिद्वन्द्वी बना उनमें परस्पर वैषम्य ले आने वाले ईर्ष्या, द्वेष आदि भावों को भी बड़े कौशल से उभारा है। 'वेश्या' कहानी की माधुरी प्रेमाभिनय करने वाले दयाकृष्ण से सच में प्रेम करने लगती है जिससे दयाकृष्ण अपने मित्र सिंगारसिंह को उसके पाश से मुक्त कराने के मनोरथ को सिद्ध कर लेता है, किन्तु माधुरी इस वास्तविकता से अवगत होने पर टूट जाती है और आत्महत्या कर लेती है। वस्तुतः प्रेम से प्रेम उपजता है, इसलिए दयाकृष्ण भी उससे प्रेम करने लगा था किन्तु एक वेश्या को पत्नी-रूप में स्वीकार करने का मनोबल उसमें नहीं था।

'विद्रोही' कहानी की तारा आर्थिक असमानता के कारण अपने प्रेमी कृष्णा को पति-रूप में प्राप्त नहीं कर पाती। यद्यपि कृष्णा दहेज के लोभी अभिभावकों का तीव्र विरोध करता है किन्तु अपमानित और तिरस्कृत किए जाने के भय से तारा के घर नहीं जाता। उसके मौन को उसकी भी स्वीकृति समझ तारा को अपने अभिभावकों द्वारा निश्चित किए विवाह-सम्बन्ध को स्वीकृति देनी पड़ती है। तारा का पूर्व प्रेम सच्चा है अतः अपने पति के सम्मुख उसे स्वीकारते वह संकुचित नहीं होती जबकि कृष्णा का जीवन नष्ट हो जाता है। लेखक ने दहेज का घोर विरोध किया है तथा युवकों को इस दिशा में अधिक दृढ़ कदम उठाने की प्रेरणा दी है।

2. प्रेम का विकृत स्वरूप

प्रेमचन्द के अनुसार जब प्रेम-भाव में ईर्ष्या, द्वेष, कपट, स्वार्थ आदि चरित्र के अशुभ पक्ष प्रवेश पा जाते हैं तो वे उसे विकृत और अमंगलकारी बना देते हैं। ऐसा प्रेम केवल शारीरिक या मानसिक स्तर तक रहता है तथा उसके मूल में कोई-न-कोई स्वार्थ छिपा रहता है। प्रेमचन्द ने प्रायः अपनी पन्द्रह कहानियों में इस प्रकार के विकृत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रेम का अंकन किया है। प्रेम में विकृति के विभिन्न रूपों—स्वेच्छाचारिता, प्रतिहिंसा, प्रतिशोध, स्वार्थ, प्रदर्शनप्रियता आदि—को इन तीन मुख्य बिन्दुओं के अन्तर्गत विवेचित किया जा सकता है—

(अ) स्वेच्छाचारिताजन्य विकृति,

(आ) प्रतिशोध एवं प्रतिहिंसाजन्य विकृति,

(इ) कलुषित स्वार्थप्रेरित विकृति।

(अ) स्वेच्छाचारिताजन्य विकृति : प्रेमचन्द की 'दारोगा जी' तथा 'ज्वालामुखी' कहानियाँ स्वेच्छाचारिता से विकृत हुए प्रेम को प्रतिपाद्य बनाकर लिखी गई हैं। 'दारोगा जी' कहानी में सदर के दारोगा की प्रेमिका लैली अत्यन्त स्वेच्छाचारिणी है। वह एक साथ ही मीर और दारोगा जी दोनों को अपने प्रेमपाश में फँसाए रखती है और अपने पति के प्रति एकनिष्ठ होने का स्वाँग रचाती है। प्रेमचन्द को नारी की यह स्वेच्छाचारिता सह्य नहीं थी, इसलिए वह इस घृणित व्यापार को तत्क्षण बन्द करने के लिए घटनाओं का विचित्र-सा त्रिकोण रच देते हैं। मीर की उपस्थिति में दारोगा जी के आने पर लैली मीर को एक कोठरी में बन्द कर देती है, किन्तु दारोगा जी के रहते पति के आ जाने पर घबड़ाकर दारोगा जी को उसी कोठरी में बन्द कर देती है जिसमें मीर साहब थे। दरवाज़ा खुलने में हुए विलम्ब और अन्दर से आने वाली आवाज़ों के कारण सशंकित पति कोठरी का दरवाज़ा तोड़ देता है। दारोगा जी तो मीर के साथी बन बच निकलते हैं किन्तु क्रुद्ध पति मीर की नाक काट लेता है।

इसी प्रकार की स्वेच्छाचारिता 'ज्वालामुखी' कहानी की चरितनायिका में भी मिलती है। ऐशगढ़ की रूपवती और विलासिनी स्वामिनी विज्ञापनों के माध्यम से जीविकोपार्जन के लिए भटकते युवकों को सहज आकृष्ट कर लेती है। वह कार्य के रूप में उनसे केवल अपने प्रेम-पत्रों के उत्तर लिखवाती है, किन्तु साथ-साथ उन्हें अपनी वासना-तृप्ति का भी साधन बनाए रखती है। उन्हें भोग चुकने के पश्चात् वह उन्हें असह्य यंत्रणा भोगने के लिए तहखाने में फिंकवा देती है। कथानायक भी इस भोगवादी स्वेच्छाचारी युवती के चक्र में फँस जाता है किन्तु एक वृद्ध उसे तहखाने का दृश्य दिखाकर शीघ्र ही सचेत कर वहाँ से भाग जाने के लिए प्रेरित करता है जिससे उसकी रक्षा हो जाती है। यद्यपि प्रेमचन्द अधिकांशतः अपने जीए-भोगे जीवन और परिवेश को ही अपना प्रतिपाद्य बनाते हैं, तथापि इस कहानी की नायिका लेखक की कल्पना-सृष्टि है। कहानी प्रतीकात्मक है जिसमें युवती (आधुनिक युवा वर्ग की भोगवादी प्रवृत्ति), वृद्ध (उसकी अन्तरात्मा), तहखाना (भोगवाद के दुष्परिणाम) सब प्रतीकात्मक अर्थवत्ता से संयुक्त हैं। आज शिक्षित युवा वर्ग अतिशय भोगवादी और विलासी है। अत्याधुनिक भोग-सामग्रियाँ, ऐश्वर्यमंडित जीवन-पद्धति, सुन्दर पत्नी का दिवास्वप्न आदि उसे जगह-जगह भटकाते हैं जबकि उसकी अन्तरात्मा उसे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

निरन्तर अतिशय भोगवाद के दुष्परिणामों के प्रति सचेत करती रहती है। जो युवक अन्तरात्मा के निर्देशानुसार स्वयं को उस प्रलोभन से मुक्त कर पाते हैं वे पतित होने से बच जाते हैं। लेखक का गूढ़ मंतव्य अन्त में जाकर स्पष्ट होता है किन्तु उसके लिए किंचित् प्रयास आवश्यक है। नारी के प्रति अत्यधिक सहृदय होने के कारण प्रेमचन्द ने उसकी स्वेच्छाचारिता का दायित्व भी युवकों की भोगवादी वृत्ति पर डाल दिया है तथापि ऐसी नारियों को वे अच्छा नहीं मानते थे।

(आ) प्रतिशोध एवं प्रतिहिंसाजन्य विकृति : सच्चे पवित्र प्रेम में प्रतिशोध एवं प्रतिहिंसा के लिए तो स्थान ही नहीं होता। उसका रूप विकार-रहित उत्सर्ग में ही प्रस्फुटित होता है और ऐसा ही त्याग, उत्सर्ग तथा सेवा से पोषित आदर्श प्रेम प्रेमचन्द का काम्य था। इसीलिए उन्होंने प्रेम की इस विकृति का अंकन केवल एक कहानी 'फातिहा' में किया है। चरितनायिका अफ्रीदी 'तूरया' पिता द्वारा अर्थप्राप्ति के लिए कैद किए गए फ़ौजी मेजर हिम्मत सिंह से प्रेम करने लगती है। उसके प्रेम का आधार प्रेमी का संगीत है। तूरया का पिता अपेक्षित धन न मिलने पर मेजर को अंधकूप में डाल देता है तथा मार डालने की धमकी देता है। प्रेमी की उदासी और खिन्नता तूरया को उद्विग्न कर देती है। मेजर ने उसे अपने दो बच्चों के विषय में बताया था, किन्तु अपनी पत्नी के जीवित होने की बात को छिपा गया था। नारी होने के कारण बच्चों की पीड़ा का अहसास तूरया को हो जाता है और वह मेजर से रुपया भेजने का वादा करवा कर उसे छोड़ देती है। वह स्वयं उसके पास आने का भी आश्वासन देती है। तीन वर्ष पश्चात् जब वह काबुली औरत के वेश में उसके पास निकाह के लिए कहने जाती है तो उसे पत्नी के साथ देखकर क्रोध और प्रतिहिंसा से भर उठती है और उसकी पत्नी को मार डालती है—"अब पहचान ले, मैं तूरया हूँ। मैं आज तेरे घर में रहने के लिए आई थी। मैं तुझसे विवाह करती और तेरी होकर रहती। तेरे लिए मैंने बाप, घर, सब-कुछ छोड़ दिया था, लेकिन तू झूठा है, मक्कार है। तू अब अपनी बीवी के नाम को रो, मैं आज से तेरे नाम को रोऊँगी।"[1] वह फिर प्रेमी के समस्त प्रणयानुरोधों को भी ठुकरा देती है, पर उसके बच्चों को पूर्ण ममता देती है। लेखक ने तूरया को अफ्रीदी जाति की होने के कारण इस प्रकार की प्रतिशोध वृत्ति और बर्बरता से युक्त दिखाया है। उन्होंने पुरुष के असत्य-भाषण और विश्वासघात को नारी की उक्त नृशंसता के लिए उत्तरदायी माना है।

(इ) कलुषित स्वार्थप्रेरित विकृति : अपने किसी स्वार्थ की सिद्धि अथवा आदर्श या सिद्धान्त की पूर्ति के लिए प्रेम का खेल रचानेवाली नारियाँ भी प्रेम को विकृत और विफल बनाती हैं। प्रेमचन्द को किसी भी प्रकार का अनुबन्धित प्रेम स्वीकार्य नहीं था। उनके अनुसार तो प्रेम का बीज एक बार हृदय में पड़ जाने के

---

1. मानसरोवर, भाग 7, पृष्ठ 167

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पश्चात् बिना जल, प्रकाश और वायु के भी बढ़ता ही जाता है। उन्होंने उस प्रकार के प्रेम को अन्ततः विफल चित्रित कर उससे विरक्त रहने की सम्मति दी है।

'कैदी' कहानी की राष्ट्रभक्त, संगीतप्रेमी विदुषी नायिका हेलेन मास्को के समृद्ध, सुरा-सुन्दरी में डूबे रहनेवाले युवक से प्रेम करती है। रुचियों की भिन्नता और प्रकृतिगत विषमता भी उनके प्रेम-मार्ग में बाधक नहीं बन पातीं। हेलेन अपने प्रेमी को भी अपने सदृश राष्ट्रवादी बना, राजनीतिक संग्राम में सक्रिय बना लेती है। वह उक्रायेन प्रान्त के आतंकवादी, अत्याचारी, अन्यायी और राष्ट्रवादी गवर्नर रोमनाफ की हत्या करने के लिए स्वयं उससे प्रेमाभिनय करने और ऐसे ही क्षणों में आइवन द्वारा उसकी हत्या करवाने की षड्यन्त्रकारी योजना बनाती है और आइवन को उसके लिए तैयार कर लेती है। अभिनय जब वास्तविक प्रेम का रूप ले लेता है तब उसकी योजना डगमगाने लगती है। हत्या के दिन भी वह रोमनाफ को हत्यास्थल से हटाने का प्रयास करती है, किन्तु सफल नहीं होती। उसके प्रेम में पागल आइवन हत्या के प्रयास में असफल रहता है और गिरफ़्तार कर लिया जाता है। स्वार्थी हेलेन रोमनाफ से विवाह कर उसके साथ रहने लगती है किन्तु लेखक को उसका यह नैतिक पतन स्वीकार्य नहीं, अतः वह निरन्तर आइवन को स्मरण करती है। जब आइवन कारावास से मुक्त हो उससे मिलने और उसके कुकृत्यों पर उसे लांछित करने आता है तो हेलेन की अर्थी सजी पाता है। रोमनाफ द्वारा हेलेन के पश्चात्ताप की बात जान वह उसे क्षमा ही नहीं कर देता, बल्कि स्वयं भी उसके पास पहुँच जाता है।

'नया विवाह' की नायिका आशा पुंसत्वहीन वृद्ध डेंगामल से उनकी सम्पत्ति के कारण विवाह करती है किन्तु अपनी काम-वासना की तृप्ति महाराज के सुन्दर बलिष्ठ युवा पुत्र जुगल से करती है। उसकी यह दोहरी चाल उसकी स्वार्थ-वृत्ति की परिचायक है। लेखक की दृष्टि में उसका प्रेम विकृत और निन्द्य है। 'मेरी पहली रचना' की चम्पा चमारिन का अपने मालिक मामू साहब से प्रेम भी धन-लोभ के कारण है। अविवाहित मालिक की वासना-दृष्टि को पहचान यह निम्न-वर्गीय स्त्री उनसे प्रेम का स्वाँग रचा, निरन्तर रुपया-पैसा और आभूषण ऐंठती रहती है। चमारों द्वारा दरवाज़ा तोड़े जाने पर स्वयं भाग जाती है, पर हड्डी तुड़वाकर मालिक को कई दिन तक गुड़-हल्दी पीनी पड़ती है। प्रेमचन्द ने निम्न जाति की स्त्रियों में इस प्रकार की अनैतिकता को अर्थाभाव के कारण उत्पन्न माना है तथा उससे बचने की सम्मति दी है।

'जिहाद', 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन', 'शेख मखमूर' तथा 'सती' कहानियों की नायिकाओं का प्रेम अनुबन्धित है। 'जिहाद' की श्यामा धर्मदास नामक व्यक्ति के सौन्दर्य और स्वास्थ्य पर रीझती है। वह बुआ द्वारा चुने गए कृशकाय, क्षीण खजानचन्द को पति के रूप में स्वीकार नहीं कर पाती। यात्रा के दौरान पठानों द्वारा घेरे जाने और धर्म-परिवर्तन के लिए बाध्य किए जाने पर धर्मदास उन्हें टालने के लिए इस्लाम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

स्वीकार करने की स्वीकृति दे देता है किन्तु उस दिन ग़ायब हो जाता है। श्यामा उसके इस आचरण पर खिन्न हो उससे विरक्त हो जाती है। दुर्बल होते हुए भी खजानचन्द धर्म-परिवर्तन करना स्वीकार नहीं करता और विद्रोहियों से लड़ते हुए मारा जाता है। धर्मदास की प्रणय-याचना को निर्ममता से ठुकराकर श्यामा खजानचन्द की विधवा के रूप में जीने का संकल्प करती है। निराश धर्मदास भी आत्मघात कर लेता है। वस्तुत: श्यामा प्रेम से अधिक धर्म को महत्त्व देती है तथा धर्म और भारतीय गौरव की रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग कर सकने में समर्थ पुरुष को ही अपना प्रेमपात्र बनाना चाहती है।[1] इस भाँति अनुबन्धित होने के कारण उसका प्रेम अन्तत: विफल रहता है।

'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' की चरितनायिका दिलफरेब अपने प्रेमाकांक्षी युवक दिलफिगार का दुनिया को सर्वाधिक अमूल्य रत्न लाकर देने पर ही अपना प्रेमपात्र बनाना स्वीकार करती है। दिलफिगार द्वारा लाए गए उपहार—फाँसी पर चढ़ाए जाने से पूर्व एक अनाथ बच्चे को देखकर निकले काले चोर के आँसू तथा सती की राख—उसकी दृष्टि में निरर्थक रहते हैं। अन्तत: हज़रते खिज्र के निर्देशानुसार भारत से रणभूमि में राष्ट्र की रक्षा करते हुए वीरगति पाने वाले वीर के रक्त की अन्तिम बूँद ले जाने पर ही वह नृशंस और कठोरहृदया प्रेमिका पसीजती है और उसकी मलिका बनने को तैयार होती है।[2] वह एक तख्ती पर लिखवा कर टाँक देती है— "खून का वह आखिरी कतरा जो वतन की हिफ़ाज़त में गिरे, दुनिया की सबसे अनमोल चीज़ है।"[3] दिलफरेब के प्रेम में रागात्मकता का अभाव है। वह देश-प्रेम को सब भावनाओं से ऊपर समझती है।

'शेख मखमूर' की मलिका किसी साहसी, ईमानदार और जवांमर्द से निकाह करने के लिए कुछ शर्तें रखती है। शेर का शिकार करते हुए उसके मुल्क में आ गया मसऊद उसके प्रश्नों के तीखे स्वाभिमानपूर्ण और पुरुषोचित उत्तर देता है। वह मलिका के वारों को बचाता है पर स्त्री होने के कारण उस पर वार नहीं करता और अन्तत:आहत हो गिरफ़्तार कर लिया जाता है। शिविर में मलिका उसकी सेवा करती है और दोनों में परस्पर प्रेम-भाव उत्पन्न हो जाता है। मलिका की परीक्षा अभी पूरी नहीं हुई थी, अत: वह उससे चले जाने के लिए कहती है तथा दंडस्वरूप उसकी तलवार रख लेना चाहती है। मसऊद अपने पिता, जन्नतनिशां के शाह बामुराद द्वारा

---

1. "मैं उस धर्मवीर की ब्याहता हूँ, जिसने हिन्दू जाति का मुख उज्ज्वल किया है। तुम समझते हो कि वह मर गया। यह तुम्हारा भ्रम है। वह अमर है। मैं इस समय भी उसे स्वर्ग में बैठा देख रही हूँ।"
—मानसरोवर, भाग 7, पृष्ठ 154
2. "आज से तू मेरा मालिक है और मैं तेरी लौंडी।"—गुप्तधन, भाग 1, पृष्ठ 8
3. वही, पृष्ठ 9

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विरासत में प्राप्त तलवार की रक्षा के लिए अकेले ही मलिका के सिपाहियों को परास्त कर उसकी दृष्टि में बहुत ऊँचा उठ जाता है। वह उसे मुक्त कर देती है। मसऊद फ़कीरी वेश में शेख मखमूर के सरदार नमकखोर को जन्नतनिशां पर आधिपत्य स्थापित करने में सहयोग देता है। वस्तुतः मसऊद जन्नतनिशां मुल्क का शाहज़ादा था, किन्तु जब नमकखोर मलिका को गद्दी पर आसीन करना चाहता है तो वह अपने प्रेम के लिए अपने स्वत्व को भी त्यागने को तैयार हो जाता है। मलिका यद्यपि मुल्क की मलिका है पर उसके दिल के मुल्क पर मसऊद का राज्य था : "मसऊद मैं एक नाचीज़ तोहफ़ा तुम्हारे लिए लाई हूँ और वह मेरा दिल है।"[1] कहकर वह उसके प्रति समर्पित हो जाती है। एक वर्ष पश्चात अकस्मात् मसऊद की माता द्वारा उसके शाहज़ादा होने के रहस्य का उद्घाटन किए जाने पर मलिका उसे गद्दी भी सौंप देती है।

'सती' कहानी की चरितनायिका की शर्त है—"मेरा हृदय उसी पुरुष-सिंह के चरणों पर अर्पित हो सकता है जो प्राणों की बाज़ी खेल सकता हो।"[2] वह ऐसा पुरुष न मिलने पर आजीवन ब्रह्मचारिणी रहने की प्रतिज्ञा करती है। अपनी सेना के एक बुन्देला योद्धा रत्नसिंह की वीरता, विनय मिश्रित संकोच से वह प्रभावित होती है। रत्नसिंह भी उसके प्रति प्रेम-भाव रखता है, किन्तु दोनों ही उसे व्यक्त नहीं करते। रत्नसिंह चिंतादेवी को मारने आए तीन व्यक्तियों को अकेला ही मार गिराता है। वह स्वयं भी बुरी तरह घायल हो जाता है। चिंतादेवी अपनी परिचर्या, सेवा और प्रेम द्वारा उसे स्वस्थ ही नहीं करती बल्कि उसे पति रूप में स्वीकार भी करती है। कालान्तर में जब रत्नसिंह में वह उन गुणों का अभाव पाती है तो उसके जीवित रहते ही चिता में जलकर सती हो जाती है। उसके प्रेम व त्याग से अभिभूत रत्नसिंह भी उसी चिता में कूदकर प्राण दे देता है।

निष्कर्ष

प्रेम मानवीय भावनाओं में सर्वाधिक संवेदनशील होता है। प्रेमचन्द ने प्रेम को सामान्यतः अधिक महत्ता न देकर समस्याओं के उपस्थापन और विवेचन की विविध शैलियों द्वारा रचनाओं को सरस बनाया है। उनकी बहुत कम प्रेमिकाएँ अपने प्रेम में सफल होती हैं। अधिकांश की नियति गृहत्याग अथवा आत्मघात ही रहती है। किन्तु प्रेमचन्द ने जिन कहानियों में प्रेम का अंकन किया है वहाँ वह चाहे व्यक्तिगत प्रेम हो, अथवा देश, कर्त्तव्य, मर्यादा आदि से प्रेरित हो, अपने आदर्श और विकृत दोनों रूपों में अंकित हुआ है। प्रेम का समाज-सापेक्ष आदर्श रूप ही उन्हें ग्राह्य था। जो प्रेम सामाजिक स्वीकृति

---

1. गुप्तधन, भाग 1, पृष्ठ 22
2. मानसरोवर, भाग 5, पृष्ठ 69

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पाकर विवाह-रूप में परिणत न हो सके उसे वे अनुचित और निन्द्य मानते थे। प्रेम का एकनिष्ठता, त्याग और लोकमंगल से संयुक्त होना भी वे अनिवार्य मानते थे। उनकी आदर्श प्रेमिकाओं में उक्त सभी गुणों की अवस्थिति पाई जाती है फिर चाहे वे अन्त में अपने प्रेम-पात्र को पाकर सुखी दाम्पत्य जीवन बिताने में सफल हों अथवा त्रासद जीवन व्यतीत करने के लिए विवश रहें।

प्रेमचन्द ने असामाजिक प्रेम को उचित नहीं माना। जाति,धर्म अथवा अर्थ की असमानता, दूषित सामाजिक व्यवस्था, रूढ़ि, अन्धविश्वास, युवक-युवतियों में अपेक्षित मनोबल का अभाव आदि को प्रेम की विफलता का मूल मानते हुए भी उन्होंने उन्हें इस प्रकार के सम्बन्धों से यथासंभव बचने की सम्मति दी है। उनकी दृष्टि में स्वार्थ, प्रतिशोध या प्रतिहिंसा से प्रेरित अथवा अनुबंधित प्रेम विकृत होने के कारण अन्ततः विफल रहता है। उन्होंने अपनी कहानियों में उनका बड़ा ही सशक्त अंकन किया है। प्रतिपाद्य की प्रस्तुति के लिए भी उन्होंने विविध विधियों का प्रयोग किया है। जहाँ प्रेम के विवेचन को जाति-भेद, धार्मिक संकीर्णता, अंधविश्वास आदि समस्याओं से सम्बद्ध कर दिया गया है वहाँ मुख्य प्रतिपाद्य ही अधिक उभरा है, चरित्र तथा अन्य तत्त्व गौण रहे हैं; और जहाँ वह स्वतंत्र प्रतिपाद्य के रूप में कहानी में केन्द्रित रहा है वहाँ कथ्य और चरित्र दोनों समानान्तर उभार पाते चले हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

चतुर्थ अध्याय

नारी और पुरुष के सम्बन्ध-सूत्र : गार्हस्थ्य जीवन के परिप्रेक्ष्य में

गार्हस्थ्य जीवन में पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्धों को नारी-जीवन का महत्त्वपूर्ण नियामक माना जा सकता है। हिन्दू जाति में विवाह एक ऐसा पवित्र धार्मिक अनुष्ठान है जो स्त्री-पुरुष को प्रणय के सूत्र में आबद्ध करता है। प्रारंभ में विवाह के लिए स्वयंवर की प्रथा प्रचलित थी जिसमें कन्या स्वतः अपना जीवन-सहचर चुनने के लिए स्वतंत्र थी। कालान्तर में माता-पिता के अनुमोदन को भी आवश्यक माना जाने लगा। पुरोहितवाद की प्रबलता होने पर जन्म-कुण्डली आदि के कारण विवाह जटिल संस्कार बन गया। आधुनिक काल में तीनों ही पद्धतियाँ प्रचलित हैं। किन्तु इनमें बहुधा परस्पर तालमेल न बैठने से विवाह एक चिंतनीय प्रश्न बनता जा रहा है। पाश्चात्य शिक्षा-प्राप्त आधुनिक विचारधारा के युवक-युवती कहीं अभिभावकों की सहमति से तो अन्यत्र उनके विरुद्ध जाकर विवाह कर लेते हैं। प्राचीन संस्कारों और मान्यताओं में आस्था रखनेवाले व्यक्ति कुंडली मिलवाना आवश्यक मानते हैं, किन्तु सामान्यतः जन्म और कर्मपत्री का वैषम्य इसे भी औपचारिक बनाता जा रहा है।

विवाह किसी भी विधि से सम्पन्न हो, वह अनिवार्यतः सुखद ही नहीं होता। अभिभावकों की अनुमति से या उनके द्वारा निर्धारित विवाह कहीं दहेज के कारण, कहीं अनमेल होने से, कहीं बहुविवाह के कारण और कहीं पति-पत्नी में आयु या स्तर-भेद-जनित असामंजस्य के कारण सफल नहीं होते। पुरुष की चरित्रहीनता, विलासिता, पत्नी के प्रति सशंक दृष्टि, पारिवारिक कलह अथवा नारी की अकर्मण्यता, लिप्सा, स्वार्थवृत्ति आदि भी उसे दुःखद बनाते हैं। प्रेमचन्द ने दाम्पत्य जीवन के विविध चित्रों में सुखद और दुःखद दोनों रूपों को कहानियों का विषय बनाया है। इस आधार पर उनकी कहानियों में नारी के गार्हस्थ्य जीवन की दो स्थितियाँ स्पष्ट हैं—
1. गार्हस्थ्य जीवन की सुखद स्थितियाँ, 2. गार्हस्थ्य जीवन की विषम स्थितियाँ।

1. गार्हस्थ्य-जीवन की सुखद स्थितियाँ

प्रेमचन्द यद्यपि दाम्पत्य जीवन की सरसता और प्रसन्नता के लिए पुरुष और स्त्री

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दोनों में सद्‌गुणों और सामंजस्य का होना अनिवार्य मानते थे किन्तु उन्होंने नारी को उसके लिए अधिक उत्तरदायी माना है। प्रेमचन्द के अनुसार त्याग, क्षमा, पातिव्रत आदि गुणों से दाम्पत्य जीवन सुखद, सफल और मंगलमय बनता है।

(अ) पति-परमेश्वर का आदर्श : प्रेमचन्द ने गार्हस्थ्य जीवन में स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध सूत्र को सुदृढ़ बनाने के लिए यह आवश्यक माना है कि स्त्री अपने पति के प्रति पूर्णतया समर्पित रहे। मुलिया (सती), इन्दिरा (हिंसा परमोधर्मः), विद्याधरी (शाप), मुलिया (घासवाली) ऐसी ही सतीत्व-शक्ति से प्रेरित नारियाँ हैं। गोविन्दी (बहिष्कार), बुधिया (नेऊर), दुर्गाकुंवरि (पाप का अग्निकुंड), डाकू सरदार की पत्नी (शाप) पति के मरणोपरान्त प्राणोत्सर्ग करनेवाली अथवा सती हो जानेवाली नारियाँ हैं।

'सती' कहानी की रूपवती मुलिया काले कुरूप कल्लू के प्रति भी पूर्ण समर्पित रहती है : "जब तक वह घर नहीं आता मछली की भाँति तड़पती रहती है। गाँव में कितने ही युवक हैं, जो मुलिया से छेड़छाड़ करते रहते हैं पर उस युवती की दृष्टि में कुरूप कलुआ संसार भर के आदमियों से अच्छा है।"[1] यद्यपि दोनों में परस्पर अगाध प्रेम है तथापि कल्लू अपने रत्न को अपने रूपवान् चचेरे भाई राजा से बचा कर रखने का हर संभव प्रयास करता है। होली के अवसर पर निर्धन कलुआ द्वारा लाई गई लट्ठे की मोटी साड़ी के स्थान पर सुन्दर महीन चुनरी लाकर राजा मुलिया को पटाने का प्रयास करता है। मना करने पर विष खा लेने की धमकी देने पर मुलिया चुनरी रख लेती है, किन्तु अपराध-बोध के कारण कलुआ को नहीं बताती। स्वप्न में कलुआ की मृत्यु और एक वृद्धा द्वारा उसका कारण स्वयं उसका सत-भंग बताने पर वह इतनी विचलित हो जाती है कि कलुआ को चुनरी की घटना बता देती है। कलुआ इसे उसका विश्वासघात समझ उसके विमुख रहने लगता है और अपने आहत मन को बहलाने के लिए ताड़ी और चरस का अवलम्ब लेने लगता है जिससे वह रोगी हो जाता है। मुलिया की अथक सेवा और परिश्रम से उसके मन का मालिन्य कम हो जाता है और यह जानकर कि मुलिया ने चुनरी जला दी वह उस पर मिथ्या सन्देह करने की ग्लानि से भर उठता है। मुलिया की एकनिष्ठता भी कलुआ को नहीं बचा पाती। मुलिया पर वैधव्य पहाड़-सा टूट पड़ता है। वह दिन-भर कठोर परिश्रम करती और रात-भर उसकी स्मृति में रोती रहती। राजा के प्रणयानुरोध को ठुकराती हुई वह कहती है— "तुम्हारे लिए और दुनिया के लिए वह नहीं हैं, मेरे लिए वह अब भी वैसे ही जीते-जागते हैं। मैं अब भी उन्हें वैसे ही बैठे देखती हूँ। पहले तो देह का अन्तर था। अब तो वह मुझसे और भी नगीच हो गए हैं।"[2] उसकी अनन्य पति-भक्ति, अटूट विश्वास

---

1. मानसरोवर, भाग 4, पृष्ठ 124
2. मानसरोवर, भाग 4, पृष्ठ 130

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

और तेज के सम्मुख विलासी राजा टिक नहीं पाता। कलुआ के प्रति उसका प्रेम सच्चा, गहन और आत्मिक था अतः रूप, धन अथवा अन्य आकर्षण उसे विचलित नहीं करते। स्वप्न में भी सत-भंग उसे सह्य नहीं। वह निम्न जाति की नारियों में शील का आदर्श स्थापित कर देती है।

'हिंसा परमो धर्मः' कहानी की चरितनायिका इन्दिरा को अपने सतीत्व की रक्षा के लिए मुसलमानों से संघर्ष करना पड़ता है। पति के पास शहर पहुँचने पर, पति को स्टेशन पर अनुपस्थित पा वह जिस ताँगे पर घर के लिए चलती है वह उसे मस्जिद पहुँचा देता है। क़ाज़ी द्वारा कमरे में बन्द किए जाने तथा धर्म-परिवर्तन कर एक मुसलमान युवक से निकाह करने के लिए ज़बरदस्ती करने पर वह उनके धर्म और कर्म की घोर भर्त्सना करती है—"क्या तुम्हें खुदा ने यही सिखाया है कि पराई बहू-बेटियों को ज़बरदस्ती घर में बन्द करके उनकी आबरू बिगाड़ो?"[1] कटु विगर्हणा से क्षुब्ध क़ाज़ी द्वारा मार डालने की धमकी देने पर वह अत्यंत दृढ़ता से कहती है—"आबरू के सामने जान की कोई हक़ीकत नहीं। तुम मेरी जान ले सकते हो, मगर आबरू नहीं ले सकते।"[2] उसकी एकनिष्ठता और तेजस्विता से अभिभूत होकर निकाह के लिए प्रस्तुत किया गया मुसलमान युवक उसे उसके घर पहुँचाता है। उसका साहस, स्पष्टवादिता और निर्भीकता प्रशंसनीय है।

'शाप' कहानी की विद्याधरी भी सतीत्व से दीप्त है। सखी के पति नृसिंहदेव के विषयासक्त स्पर्श से तिलमिलाकर वह उन्हें पशु होने का शाप दे देती है। यद्यपि पति के अर्जुन नगर के जागीरदार बनने पर उसके चरित्र में किंचित् स्खलन आता है और वह पति से छिपाकर युवराज से कंगन स्वीकार करती है तथापि सन्देही पति द्वारा त्यागे जाने पर घोर प्रायश्चित्त करती है। अन्ततः पति के पुनः लौटने पर ही उसका दुःख दूर होता है। सती होने के कारण उसका श्राप भी सत्य होता है।

'घास वाली' कहानी में महावीर चमार की ब्याहता मुलिया का सौन्दर्य जागीरदार चैनसिंह को वासनाकुल कर देता है। यद्यपि मुलिया झगड़ा बचाने के लिए महावीर को चैनसिंह द्वारा अपने अपमान की बात नहीं बताती तथापि अपना निम्न जाति की होने का भाव उसे ग्लानि से भर देता है। महावीर के प्रेम के प्रति वह पूर्ण आश्वस्त है—"मेरे आदमी के लिए संसार में जो कुछ हूँ मैं हूँ। वह किसी दूसरी मिहरिया की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। संयोग की बात है कि मैं तनिक सुन्दर हूँ लेकिन मैं काली-कलूटी भी होती, तब भी वह मुझे इसी तरह रखता। मैं चमारिन होकर भी इतनी नीच नहीं हूँ कि विश्वास का गला घोंट दूँ।"[3] चैनसिंह के पुनः प्रणयानुरोध पर वह

1-2. मानसरोवर, भाग 5, पृष्ठ 80-81

3. मानसरोवर, भाग 1, पृष्ठ 252

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उसे लांछित करते हुए कहती है—"अगर मेरा आदमी तुम्हारी औरत से इसी तरह बातें करता तो तुम्हें कैसा लगता ? तुम उसकी गर्दन काटने को तैयार हो जाते कि नहीं।···क्या तुम समझते हो कि महावीर चमार है तो उसकी देह में लहू नहीं, उसे लज्जा नहीं है, अपनी मर्यादा का विचार नहीं है ?"[1] उसका स्वाभिमान और दृढ़ता चैनसिंह का हृदय-परिवर्तन कर देती है और वह मुलिया को देवी समझने लगता है। धन के लिए मर्यादा का सौदा न करने वाली मुलिया भी निम्नवर्गीय नारियों के सम्मुख सतीत्व का आदर्श प्रस्तुत करती है।

'बहिष्कार' कहानी में पंडित ज्ञानचन्द्र की पत्नी गोविन्दी का विलक्षण प्रेम उसे सतीत्व की चरम श्रेणी में प्रतिष्ठित कर देता है। पति को पति-परित्यक्ता कालिन्दी को घर लाने के लिए उत्सुक देख वह उन्हें उसे घर लाने की अनुमति ही नहीं देती, अपितु उसे भगिनीवत् स्नेह देती है। कालिन्दी के पति सोमदत्त द्वारा कालिन्दी को घर से न निकालने पर गोविन्दी के बहिष्कृत परिवार की कन्या होने के रहस्योद्घाटन की धमकी भी उसे विचलित नहीं करती किन्तु कालिन्दी के स्वत: पति के पास चले जाने पर उसे आश्चर्य अवश्य होता है। सामाजिक बहिष्कारोपरान्त वह आभूषण बेचकर, दूसरों का आटा पीसकर और कपड़े सिलकर परिवार का निर्वाह करती है। दूध के अभाव में एकमात्र पुत्र की मृत्यु उसे अन्दर से तोड़ देती है किन्तु वह पति को भरसक प्रसन्न रखने का प्रयास करती है। सामाजिक बहिष्कार और तिरस्कार से टूटे ज्ञानचन्द्र का पौरुष पत्नी पर अवलम्बित होने के बोध से इतना आहत हो जाता है कि वे आत्महत्या कर लेते हैं। पति की मृत्यु के समाचार से वह ढह जाती है तथा प्राणोत्सर्ग कर देती है। दोनों की अर्थी साथ-साथ उठती है।

'नेउर' कहानी की बुधिया एक सीमा तक अकर्मण्य, आभूषण-प्रिय, कर्कशा है, किन्तु वह अपने पति से आत्मिक रूप से जुड़ी रहती है। पति के गाँव छोड़कर चले जाने पर यद्यपि वह ऊपर से उसे कोसती और गरियाती दिखाई देती है, किन्तु अन्दर ही अन्दर टूट जाती है। परिणामत: तीन दिन में ही असह्य विरह-पीड़ा भोग वह परलोक सिधार जाती है।

यद्यपि प्रेमचन्द सती-प्रथा के विरोधी थे किन्तु अपनी कुछ कहानियों में उन्होंने पति की मृत्यु के पश्चात् पत्नी को स्वेच्छा से सती होते चित्रित किया है। 'पाप का अग्निकुंड' में जोधपुर की रानी दुर्गाकुँवरि अपने पति पृथ्वीसिंह से अगाध प्रेम करती हैं। उनके अफ़गानिस्तान युद्ध में जाने पर वे साहित्य-अध्ययन में समय व्यतीत करती हैं और उनके आगमन पर अत्यंत प्रसन्न हो जाती हैं किन्तु कुछ काल उपरान्त ननद के श्राप से मुसलमानों द्वारा पति का कत्ल किए जाने पर वह उनके शव के साथ सती हो

---

1. मानसरोवर, भाग 1, पृष्ठ 251

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जाती है। 'शाप' कहानी में डाकू सरदार की पत्नी अपने पति के हत्यारे क़ैदी श्रीधर को जलते अलाव में फेंक देती है, किन्तु सती प्रियम्बदा द्वारा उसे बचा लेने पर वह पति का शव लेकर उसी अलाव में कूदकर सती हो जाती है। एक कठोर दस्यु-पत्नी होकर भी वह पतिपरायण सती नारी है।

(आ) आदर्श प्रेम-सूत्र : प्रेमचन्द की न्याय (जैनब), ठाकुर का कुआँ (गंगी), पूस की रात (मुन्नी), माँ (करुणा), बाबा जी का भोग (रामधन की पत्नी) कहानियों में ऐसी नारियों का अंकन किया गया है जो विषमतम परिस्थितियों में भी पति के प्रति अपनी निष्ठा, विश्वास और प्रेम को अपना एकमात्र अवलम्ब बनाये रखती हैं। ऐसी नारियों को प्रेमचन्द आदर्श प्रेम की प्रतिमाएँ मानते हैं। इनमें से कुछ को तो अपना धर्म निभाने में सफलता मिलती है पर कुछ उच्च वर्ग के शोषण का शिकार हो अपने प्रेम को नहीं निभा पातीं।

'न्याय' कहानी में हज़रत मोहम्मद साहब को इस्लाम धर्म के प्रतिपादन के लिए उनकी पत्नी जैनब ही उत्साह और प्रेरणा देती है। इस्लामानुयायियों को लूट-पाट और रक्तपात का शिकार होते देख जब मोहम्मद साहब मक्का छोड़ने का विचार करते हैं तब वह उन्हें धैर्य बँधाती है और कर्त्तव्योन्मुख करती है। वह उनके साथ मदीना भी जाती है। उसका प्रेम अनुकरणीय है।

'माँ' कहानी में आदित्य जाति-सेवा के कारण बन्दी बनाया जाता है। उसकी पत्नी करुणा तीन माह पश्चात् पुत्र को जन्म देती है तथा पति की प्रतीक्षा करती हुई समस्त कष्टों को झेलते हुए भी बालक का पालन-पोषण करती है। पति के आगमन के लिए वह पूरी तैयारी करती है। पति को ही अपनी अनन्त निधि मानने वाली करुणा का सुख भी विधाता को सह्य नहीं होता। क्षयग्रस्त दुर्बल आदित्य अधिक भोजन करने के कारण रुग्ण हो जाता है और मरणासन्न अवस्था में उससे अपने जीवन के विषय में पूछता है। उसका उत्तर था—"तुम्हारा जीवन देवताओं का-सा जीवन था। निःस्वार्थ, निर्लिप्त और आदर्श। अगर तुम माया-मोह में फँसे होते, कदाचित् मेरे मन को अधिक संतोष होता, लेकिन मेरी आत्मा को वह गर्व और उल्लास न होता जो इस समय हो रहा है। मैं अगर किसी को बड़े-से-बड़ा आशीर्वाद दे सकती हूँ तो वह यही होगा कि उसका जीवन तुम्हारे जैसा हो।"[1] उसका उत्तर भविष्य के प्रति आदित्य को आश्वस्त कर देता है और वह निश्चिंत हो प्राण त्याग देता है। किन्तु जब करुणा अपने पति की इच्छानुरूप अपने पुत्र को जाति-सेवक नहीं बना पाती तो अत्यंत खिन्न और उदास हो जाती है। पुत्र के शिक्षा-ग्रहण करने विदेश जाने के दुराग्रह को वह पूरा तो कर देती है किन्तु, इस आघात के कारण विक्षिप्त हो उन्मादावस्था में वर्षों से संचित पति के वस्त्र,

1. मानसरोवर, भाग 1, पृष्ठ 42-43

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लुटिया, डोर, घड़ी आदि को भी अग्नि में फेंक देती है। पति के आदर्श को पुत्र में साकार न पा वह घोर निराशा में प्राण त्याग देती है।

'ठाकुर का कुआँ' की निर्धन गंगी अपने रुग्ण पति जोखू को दुर्गन्ध-युक्त गन्दा पानी पीते देख विचलित हो उठती है। वह शूद्रों के लिए निषिद्ध ठाकुर के कुएँ से जल लेने के लिए जाती है। हाथ से रस्सी के छूट जाने से घड़े के कुएँ में गिरने की आवाज़ से ठाकुर जाग जाते हैं और गंगी को वहाँ से भाग जाना पड़ता है। घर आने पर जोखू को गंदा मैला पानी पीते देख वह अपनी निम्न जाति और विपन्नावस्था पर क्षोभ से भर उठती है। वह उच्च वर्ग द्वारा शोषित एक असहाय पतिव्रता नारी है।

'पूस की रात' की मुन्नी की पीड़ा गंगी से मिलती है। वह अपने पति हल्कू से पूरा सहयोग करती है। मजूरी के बचाए गए तीन रुपयों से वह उसके लिए कम्बल लेना चाहती है अत: सेठ के कारिन्दे को देने के लिए पैसे माँगने पर वह मना कर देती है किन्तु हल्कू के तिरस्कृत और अपमानित होने की संभावना उठते ही रुपए दे देती है। वह उसे खेती छोड़कर मजूरी करने की सम्मति देती है क्योंकि तब उन पर किसी की धौंस न रहेगी। नीलगायों द्वारा फसल का नाश किए जाने पर वह चिंतित होती है, किन्तु पति के पेट-दर्द का जिक्र करते ही उसके लिए चिंतित हो जाती है। वह भी उच्च वर्ग के शोषण के कारण अपना कर्त्तव्य नहीं निभा पाती।

'बाबाजी का भोग' कहानी में रामधन अहीर की पत्नी अपने पति को भली-भाँति समझती है तथा उसी के अनुकूल आचरण करती है। घर में आटा न रहने पर भी पति द्वारा पूजा का आटा और दाल साधु को देना उसे अच्छा तो नहीं लगता किन्तु वह चुप रहती है। साधु द्वारा घी माँगने पर वह ऊपर से नाराज़गी दिखाते हुए भी पति को थोड़ी दाल के बदले घी लाने का सुझाव दे प्रसन्न कर देती है। पति की प्रसन्नता में ही प्रसन्नता का अनुभव करने वाली वह आदर्श पत्नी है।

'लेखक' कहानी की सुमित्रा पति के मान-सम्मान के लिए भीषण कष्ट ... वाली आदर्श पतिव्रता पत्नी है। वह अपने साहित्यकार पति की अल्प आय में भी मितव्ययिता से निर्वाह करती है किन्तु पति या भाग्य को नहीं कोसती। उसे पूर्ण विश्वास है कि एक-न-एक दिन उसके पति की प्रतिभा को लोग पहचानेंगे और उसकी क़द्र करेंगे। अत: वह उन्हें निरन्तर लेखन-कार्य में प्रवृत्त करती है। लोक-व्यवहार में पटु होने के कारण वह पति को अत्यंत सामान्य वस्त्रों में राजा साहब के आमन्त्रण में जाने से रोकती है। उसके कहे अनुसार वहाँ लोगों को प्रतिभा की बजाय कपड़ों पर अधिक ध्यान देते देख वे बिना भोजन किए लौट आते हैं तो उनके आत्माभिमान पर वह गर्व से फूल उठती है।

'अमावस्या' कहानी की गिरिजा निर्धनता के कारण उचित पौष्टिक आहार और चिकित्सा न मिलने पर पहले रुग्ण होती और फिर प्राण त्याग देती है किन्तु पति को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

किसी प्रकार की मानसिक वेदना नहीं पहुँचाती।

'स्वामिनी' कहानी में रामदुलारी तथा मथुरा परस्पर समर्पित दम्पत्ति हैं। रामदुलारी उसके साथ खेतों में काम करती है तथा बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के लिए शहर जाते पति के साथ शहर जाती है। वह पति के निरन्तर साहचर्य में ही सुख समझती है। 'सौत' कहानी की गोमती भी पति के अनुरूप चलनेवाली आदर्श पत्नी है। 'विमाता' कहानी की अम्बा पति की आज्ञानुसार सौतेले पुत्र पुन्नू का लालन-पालन पुत्रवत् करती है। उसका अतुलनीय स्नेह और ममत्व उसके पति को मुग्ध कर लेता है। 'उन्माद' कहानी की बागेश्वरी स्वयं मितव्ययिता से रहकर पति को विदेश में जासूस बनकर जाने की प्रेरणा देती है। पति के विदेश जाते समय भी वह उन्नति का ख्याल कर सास-ससुर की सेवा करने के लिए घर रहती है। दीर्घ काल तक पुत्र का सन्देश न पाने के कारण अंधे हो गए सास-श्वसुर के भरण-पोषण के लिए वह अपने गहने, बर्तन आदि भी बेच देती है। पति के अंग्रेज़ मेम से विवाह करने, ईसाई धर्म स्वीकार कर लेने के समाचार उसे त्रस्त करते हैं, किन्तु वह अपना मनोबल डिगने नहीं देती। अकस्मात् मानसिक विकृति से ग्रस्त मनहर का प्रत्यागमन भी उसे सन्तुष्ट कर देता है क्योंकि मनहर उसे पूर्व की अपेक्षा अधिक प्रेममय, स्नेही और अनुरक्त लगता है। इसीलिए सौत जेनी के उपचार की बात सुनकर वह कहती है—"मेरे लिए इनका बीमार रहना, इनके स्वस्थ रहने से कहीं अच्छा है। तब वह अपनी आत्मा को भूल गए थे, अब उसे पा गए। मेरे विचार में तो वे तब बीमार थे, अब स्वस्थ हैं।"[1] उन्मादित जेनी जब मनहर की हत्या करने का प्रयास करती है तो बागेश्वरी सामने आ जाती है। उसके त्याग, प्रेम आदि सद्गुणों के कारण मनहर स्वयं आत्महत्या कर उसे बचा लेता है।

'शाप' कहानी में विद्याधरी यदि सती है तो प्रियम्बदा एक सफल आदर्श पत्नी है। वह श्राप के कारण सिंह बने पति की सेवा पूर्ण तन्मयता से करती है तथा घोर प्रायश्चित्त कर उन्हें पुनः शापमुक्त कराने में सफल रहती है। वह कहती है—"अब मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि अपने स्वामी के चरणों में पड़ी रहूँ और जब इस संसार से प्रस्थान करने का समय आए तो मेरा मस्तक उनके चरणों पर हो। और अन्तिम जो शब्द मेरे मुँह से निकलें वह यही कि ईश्वर, दूसरे जन्म में भी इनकी चेरी बनाना।"[2] यद्यपि इस कहानी में पूर्व-प्रेमचन्द काल की नैतिकता और उपदेशात्मकता के कारण एक विचित्र-सी रहस्यात्मकता और असंभाव्यता आ गई है तथापि इसके नारी पात्रों की चारित्रिक उत्कृष्टता को नकारा नहीं जा सकता।

(इ) प्रतिकूल परिस्थितियों में स्त्री का प्रेरणादायक रूप : यद्यपि प्रेमचन्द के

1. मानसरोवर, भाग 2, पृष्ठ 114
2. वही, भाग 6, पृष्ठ 69

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नारी पात्र दया, माया-ममता, मधुरिमा और अगाध विश्वास की प्रतिमूर्ति हैं किन्तु आवश्यकता पड़ने पर उनकी तत्पर बुद्धि, साहस, श्रम और धैर्य पति की रक्षा और सम्मान में वृद्धि करते हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों से टकराकर अपना मार्ग प्रशस्त कर लेने की उनकी क्षमता उन्हें पुरुष से श्रेष्ठ सिद्ध करती है। प्रेमचन्द की कहानियों में ऐसे अनेक नारी पात्रों के दर्शन होते हैं। 'भाड़े का टट्टू' कहानी में रमेश की पत्नी डाके के आरोप में पति के पकड़े जाने पर उसे मुक्त कराने के सभी संभव उपाय करती है क्योंकि उसकी दृष्टि में पति के सम्मुख पैसा मूल्यहीन है।

'इस्तीफा' कहानी में क्लर्क फतहचंद की पत्नी शारदा अपने स्वाभिमानी निर्भीक चरित्र तथा प्रेरणादायक सम्मतियों से पति में सम्मान-भाव जाग्रत करती है। पति द्वारा साहब के अपमान की कपोल कल्पित कथा सुन वह गर्व से फूल उठती है क्योंकि उसकी दृष्टि में 'आदमी के लिए सबसे बड़ी चीज़ इज़्ज़त है।'[1]

'सत्याग्रह' कहानी में मोटेराम शास्त्री की पत्नी, 'डिग्री के रुपये' में पत्र-सम्पादक कैलास की पत्नी उमा, 'मोटर के छींटे' में मेमसाहब, 'निमंत्रण' में अमिरती, 'बालक' में गोमती, 'तगादा' की इक्के वाले की पत्नी सुन्दरी भी तत्पर बुद्धि वाली नारियाँ हैं, किन्तु वे कहानी में मुख्य पात्रा के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हैं। समस्या-पक्ष इतना प्रबल रहा है कि उनका चरित्र केवल आनुषंगिक उभार पा सका है।

(ई) सद्प्रेरक पत्नियाँ : कुमार्गगामी अथवा बहके पति को सुमार्ग पर लाने का कार्य भी प्रेमचन्द की नारियाँ करती हैं। उनका अथक संघर्ष और प्रयास अन्ततः सफल होता है। बहुधा ऐसी नारियाँ दाम्पत्य सुख से वंचित रहकर निरन्तर संघर्ष का जीवन व्यतीत करती हैं किन्तु उनमें मनोबल की कोई कमी नहीं होती। 'रानी सारन्धा' की सारन्धा, 'होली का उपहार' की सुखदा, 'पत्नी से पति' की गोदावरी, 'जुलूस' की मिट्ठाबाई तथा 'अनुभव' की देवी जी आदि नारियाँ प्रेरणा से अपने पतियों को राष्ट्रभक्ति की ओर उन्मुख करती हैं। सारन्धा में रागवृत्ति की अपेक्षा उत्साह का प्रस्फुटन अधिक है। वह वीर-परिणीता, वीर-वत्सला, जातीय अभिमान और आत्मिक उच्चता से युक्त वीर रमणी है। वह पति के ओरछा छोड़कर आने पर क्षुब्ध होती है तथा उसे बुन्देली आन और क्षात्र धर्म की रक्षा के लिए प्रेरित करती है। एक घोड़े को मान-सम्मान का प्रश्न बनता देख वह राज्य और राजसम्मान देकर भी उसे प्राप्त कर अपनी आन की रक्षा करती है। शत्रु की क्षमायाचना पर प्राणदान देने वाली यही उदार नारी आवश्यकता पड़ने पर अपने पुत्र को मौत के मुँह में डालने में भी नहीं हिचकती तथा पति को मारकर स्वयं भी आत्मघात कर लेती है। दया, क्षमा, उदारता के साथ ही वीरता, स्वाभिमान, राष्ट्रीयता आदि विरोधी गुणों से युक्त वह सद्प्रेरक नारी है।

---

1. मानसरोवर, भाग 5, पृष्ठ 275

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

'होली का उपहार' कहानी की सुखदा अपने पति के विदेशी वस्तुओं के प्रति लगाव को समाप्त कर उन्हें स्वदेशी वस्तुओं के प्रति उन्मुख करती है। उसे स्वयंसेविका के रूप में विदेशी वस्त्रों की दूकान पर धरना देते देख अमरकान्त आत्मग्लानि से भर ज़ाते हैं तथा प्रायश्चित स्वरूप स्वयंसेवक बन जाते हैं।

सुखदा की भाँति 'तावान' कहानी की अम्बा भी पति के मन में स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम जगाकर उसे देशद्रोह से बचाती है। वह पति द्वारा विदेशी वस्त्रों को बेचकर लाए गए धन से अपनी चिकित्सा नहीं कराती। घर को रेहन रखकर वह कांग्रेस द्वारा लगाए दण्ड को भरवाती है। उसकी चारित्रिक दृढ़ता पति को भी विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का संकल्प लेने के लिए विवश करती है।

'पत्नी से पति' कहानी की गोदावरी तथा 'जुलूस' कहानी की मिट्ठनबाई अपने पतियों को राष्ट्रभक्ति की ओर प्रेरित करती हैं। उनके व्यक्तित्व में पुरुषोचित प्रखरता, निर्भीकता और दृढ़ संकल्पशक्ति मिलती है। स्वराज्य आन्दोलन को चलाने वाली ये सक्रिय, निर्भीक, सफल, साहसी नारियाँ प्रेमचन्द की प्रौढ़कालीन कहानियों की अमर पात्राएँ हैं। 'अनुभव' कहानी की देवी जी अपने पति ज्ञानचन्द को राजद्रोही कैदी की निराश्रिता पत्नी को शरण देने के लिए ही नहीं प्रेरित करती अपितु उसे त्यागपत्र देने का मनोबल भी प्रदान करती हैं। 'चमत्कार' कहानी की चंपा, 'शोक का पुरस्कार' कहानी की लीलावती तथा 'स्वर्ग की देवी' कहानी की लीला अपने कुपथगामी पतियों को सुमार्ग पर लाती हैं। चंपा की प्रेरणा से चन्द्रप्रकाश सेठ के चोरी किए आभूषणों का बक्सा लौटा देता है तथा अपनी सीमित आय में ही संतुष्ट रहने का संकल्प करता है। लीलावती अपनी सत्प्रेरणा से रूप और शिक्षा के दंभ में डूबे पति को भी सुमार्ग पर ले आती है तथा 'स्वर्ग की देवी' कहानी की लीला वेश्यागामी पति को भी गृहस्थी की ओर मोड़ देती है। उसका पति अन्त में कहता है—"वह स्वर्ग की देवी है और केवल मुझ जैसे दुर्बल प्राणी की रक्षा करने के लिए भेजी गई है।"[1]

'शंखनाद' में गुमान की पत्नी अपने निष्क्रिय और अकर्मण्य पति को कर्म की ओर प्रेरित करती है। मिठाई के लिए रोते बच्चे को पीटते देख उसे अपने ऊपर ग्लानि आती है—"तुमने आज मुझे सदा के लिए इस तरह जगा दिया, मानो मेरे कानों में शंखनाद कर मुझे कर्मपथ में प्रवेश का उपदेश दिया हो।"[2]

'डामुल का कैदी' की प्रमिला अपने पति सेठ खूबचन्द को धर्म-मार्ग पर लाकर न्याय करने के लिए प्रेरित करती है। मिल में हड़ताल होने पर वह मज़दूरों की मज़दूरी बढ़वा देती है। गोली लगने से मज़दूर के मर जाने पर जब सेठ को पन्द्रह वर्ष के लिए

---

1. मानसरोवर, भाग 3, पृष्ठ 73
2. वही, भाग 7, पृष्ठ 145

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

काले पानी की सज़ा हो जाती है तो वह भोग-विलास का जीवन त्याग, कठिन परिश्रम कर स्वदेशी वस्तुओं का घर-घर प्रचार कर आजीविका चलाती है और अपने पुत्र का पालन-पोषण करती है। पति का आगमन उसे पुनः प्रसन्नता से भर देता है किन्तु पुत्र की मृत्यु होने पर वह उसके शोक में प्राण त्याग देती है। प्रेमचन्द की कुछ चरितनायिकाएँ अपने प्रयासों में असफल भी रहती हैं। 'ईश्वरीय न्याय' की मुंशी की पत्नी, 'बासी भात में खुदा का साझा' की गौरी ऐसी ही नारियाँ हैं।

उक्त चरित्रों को उनके आदर्श रूप में उभारने के लिए लेखक ने घटनाओं को दुहरा मोड़ दिया है। वह पहले सारे घटनाचक्र को अपनी नायिका की प्रतिकूल दिशा में गतिशील करता है, फिर नायक के हृदय-परिवर्तन, आकस्मिक या संयोगात्मक घटनाओं की योजना कर उन्हें नायिका के अनुकूल बना देता है। इसीलिए अधिकांश कहानियों में वे अन्ततः तुष्ट दिखाई गई हैं। आज के तर्कशील बौद्धिक पाठक को चाहे लेखकीय योजना हल्के स्तर की और शिल्पहीन लगे किन्तु इतना निर्विवाद है कि इस प्रकार वे नारी की अभीप्सित छवि प्रतिष्ठित करने में सफल रहे हैं।

2. गार्हस्थ्य जीवन की विषम परिस्थितियाँ

पति-पत्नी का परस्पर सहयोग और संद्भाव जहाँ उनके जीवन को स्वर्ग के समान बना देता है वहीं वैचारिक और आचरणगत वैषम्य, लिप्साएँ और कुंठाएँ उनके विकृत जीवन को नरक-तुल्य असहनीय बना देती हैं। प्रेमचन्द ने उक्त कारणों से दुःख भोगती स्त्रियों को देखा था, अतः उनकी कहानियों में उनके विभिन्न रूप स्वतः अंकित होते गए हैं।

(अ) शोषिता एवं उपेक्षिता : पति की अत्यधिक काम-पिपासा, नारी को दासीतुल्य समझ उसे उसकी शक्ति से अधिक कार्य करने के लिए विवश करना, अकारण उपेक्षित और अपमानित करना अथवा उसे त्यागना भी नारी के जीवन को अभिशप्त कर देते हैं। 'खुचड़' कहानी में रामेश्वरी अपने पति की खुचड़ निकालने की आदत से दुःखी हो जाती है। उसके किसी भी कार्य से वे प्रसन्न नहीं होते बल्कि उसे उपदेश ही देते रहते हैं। यदि वह कुंजड़िन से शाक का दाम कम कराती अथवा भिखमंगे को भगा देती तो उसे अमूल्य समय नष्ट न करने और दयावान् बनने का उपदेश दिया जाता। अच्छे-से-अच्छा भोजन और अथक सेवा में भी उन्हें कोई-न-कोई कमी दृष्टिगत होती है। दुःखी होकर वह निश्चय करती है—"अपने मन से काम ही न करूँ, जो यह कहें, वही करूँ, न जौ भर कम, न जौ भर ज्यादा··।"[1] वह अपने मन से कोई भी कार्य करना छोड़ देती है। उसके असहयोग से तंग आकर पति को

---

1. मानसरोवर, भाग 4, पृष्ठ 108

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

टोकने की आदत छोड़नी पड़ती है किन्तु प्रारम्भ में उसका जीवन बहुत दु:खी रहता है।

'नैराश्य' कहानी की निरुपमा पाँच पुत्रियों को जन्म देकर भी पति की पुत्रैषणा को तृप्त न करने के कारण उनकी विरक्ति और उपेक्षा का पात्र बन जाती है। जीवन में सुख की आशा न पाकर वह नैराश्य के अंधकार में डूब जाती है तथा पाँचवी पुत्री के जन्म पर शोक से प्राण त्याग देती है।

'माता का हृदय' कहानी में पुलिस सुपरिंटेंडेंट की पत्नी श्रीमती बागची अपने पति की आर्थिक विपन्नावस्था, रिश्वतखोरी तथा शराब की लत, अनेक सन्तानों की मृत्यु, पाँच लड़कियों के विवाह और एकमात्र पुत्र की रुग्णावस्था के कारण निरन्तर घुलती जाती हैं तथा अन्तत: अपने पुत्र को भी धाय को देने के लिए तैयार हो जाती हैं।

जहाँ अर्थाभाव श्रीमती बागची की चिंता का कारण बनता है वहीं धनाधिक्य के कारण स्वच्छन्द एवं विलासी हो गए रुई-व्यापारी श्री शापूर की प्रेमवंचिता पत्नी शीरी (जीवन का शाप) का दाम्पत्य जीवन अभिशप्त हो जाता है। 'कफन' कहानी में निम्नवर्गीय बुधिया संवेदनशून्य, निष्ठुर और अकर्मण्य पति माधव के शोषण का शिकार है। अत्यधिक परिश्रम, पौष्टिक भोजन न मिलने तथा प्रसव-काल में यथोचित चिकित्सा के अभाव में वह अकाल मृत्यु को प्राप्त होती है। उसकी कथा अत्यन्त मार्मिक है क्योंकि माधव की शोषण-प्रक्रिया उसकी मृत्यु के पश्चात् भी पूर्ववत् चलती रहती है। उसके कफन के लिए माँगे गए रुपयों से हृदयहीन माधव और घीसू भरपेट खाते और शराब पीते हैं तथा निर्जीव बुधिया का शव दूसरों की दया पर लावारिस पड़ा रहता है। सर्वहारा वर्ग के पति द्वारा पत्नी के जघन्य शोषण का यथार्थ और मार्मिक चित्रण इस कहानी में हुआ है।

'नरक का मार्ग' कहानी की कथानायिका वृद्ध, पुरुषत्वहीन, शक्की पति से ऐसा प्रेम न पाकर "जिससे दिल के तार सदैव बजते रहें, जिसका नशा नित्य छाया रहे।"[1] उसे पति-रूप में स्वीकार नहीं कर पाती तथा उसके रुग्ण होकर मर जाने पर भी दु:खी नहीं होती। प्रेम की खोज में घर से निकलने पर वह एक कुट्टनी द्वारा वेश्यालय पहुँचा दी जाती है, किन्तु उस स्थिति में भी वह अधिक सन्तुष्ट अनुभव करती है—"इस अधम दशा को भी मैं उस दशा से न बदलूँगी जिससे निकलकर आई हूँ।"[2] लेखक ने उसके माध्यम से अनमेल और वृद्ध-विवाह का विरोध करने के साथ ही प्रकारान्तर से उन अभिभावकों की कटु विगर्हणा की है जो व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए कन्याओं को वृद्ध को सौंप उनकी उमंगों को असमय कुचल देते हैं।

'दुराशा' कहानी की सेवती पति द्वारा पर्दा-प्रथा का समर्थन और अपने हर आचरण

---

1. मानसरोवर, भाग 3, पृष्ठ 28
2. वही, पृष्ठ 30

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पर सन्देह किए जाने से अपने को परतंत्र और अपाहिज समझने लगती है। दु:खी और खिन्न रहने के बावजूद वह पति का विरोध करने का मनोबल नहीं जुटा पाती। अन्ततः अपनी सूझ-बूझ और तर्क-शक्ति से वह पति को निरुत्तर कर देती है। लेखक ने पर्दा-प्रथा को एक समस्या के रूप में उभारा है किन्तु वह पात्रों के ऊपर हावी नहीं हो पाई है।

'नया विवाह' की लीला पच्चीस वर्ष का सुखद दाम्पत्य जीवन भोगने के पश्चात् बीतते यौवन के कारण बूढ़ी गाय के सदृश पति को खटकने लगती है। उसकी अथक सेवा और कृत्रिम सौन्दर्य-प्रसाधनों से बलात् उपजाया सौन्दर्य भी उन्हें रिझा नहीं पाता। उनका वेश्यागामी होना लीला को सह्य नहीं होता और इसी शोक में वह स्वर्ग सिधार जाती है। लेखक ने यह स्पष्ट कर दिया है कि वृद्धावस्था में पति-पत्नी के प्रेम में उत्तरोत्तर गहनता, मानसिक और आत्मिक अनुरूपता आती है। जिन दम्पतियों में यह गंभीरता नहीं आती उनका जीवन दु:खी रहता है।

'स्त्री और पुरुष' की कुरूप नायिका आशा अपने कवि-हृदय पति विपिन की स्वप्न-सुन्दरी न बन पाने के कारण उसकी उपेक्षा और विरक्ति सहती है। अत्यधिक भोग-विलास और असंयम के कारण पक्षाघात से ग्रस्त विपिन भी कुरूप हो जाता है किन्तु आशा अपनी अथक सेवा, त्याग, तप और प्रेम से उसे पुनः स्वस्थ कर देती है। सौन्दर्य खोकर ही वह आशा के आत्मिक सौन्दर्य से परिचित होता है और उसे देवी-तुल्य मानने लगता है। लेखक ने विवाह से पूर्व वर-कन्या की सहमति की अनिवार्यता सिद्ध कर दी है। वे रूप की अपेक्षा गुण को अधिक महत्त्व देने के पक्ष में थे। विपिन और आशा का जीवन इसीलिए विषाक्त हो जाता है क्योंकि विवाह से पूर्व उन्होंने एक-दूसरे को देखा ही नहीं था। वह बाह्य रूप को अधिक महत्ता देता था। उसके दृष्टिकोण को परिवर्तित करने के लिए पक्षाघात की संयोगात्मक घटना की आयोजना की गई है।

'आभूषण' कहानी में इलाकेदार सुरेश सिंह की रूपहीना पत्नी को भी उपेक्षित जीवन जीना पड़ता है। जब अपने त्याग, तपस्या और प्रेम से भी वह पति को अनुकूल नहीं बना पाती तो वह धृष्ट हो समानाधिकार की माँग करती है—"जहाँ प्रेम नहीं, पूछ नहीं, मान नहीं, वहाँ अब नहीं रह सकती।"[1] वह पति को छोड़कर मायके चली जाती है किन्तु उसके प्रेम और समर्पण की स्मृति से व्याकुल सुरेश सिंह उसे पुनः लिवा लाते हैं। प्रेमचन्द ने नारी के प्रेम, तपस्या और त्याग को ऐसी शक्ति माना है जिससे वह जो चाहे प्राप्त कर सकती है।

प्रेमचन्द विवाह को एक परम पुनीत, दृढ़, स्थायी अतः अविच्छेद्य सम्बन्ध मानते थे। परित्याग अथवा तलाक को वे जघन्य कृत्य मानते थे। उन्होंने इसके कारण अनेक दम्पतियों के दाम्पत्य सुख को ध्वस्त होते देखा था, अतः वे इसके घोर विरोधी थे। चाहे

1. मानसरोवर, भाग 6, पृष्ठ 125

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पति पत्नी का परित्याग करे अथवा उसके साथ सामंजस्य न बैठा पाने के कारण वह स्वयं उसे छोड़ कर चली जाए पर नारी को ही अधिक लांछना, अपमान और तिरस्कार भोगना पड़ता है। पुरुषप्रधान समाज न केवल पुरुष को नारी से श्रेष्ठ मान उसके लिए नैतिकता के मानदण्ड भी हल्के और परिवर्तनीय रखता है बल्कि नारी के छोटे-से अपराध के लिए भी कठोर दंडों का विधान कर देता है। उच्च, मध्य तथा निम्न वर्गों की नारियों की स्थिति में भी अन्तर होता है। उच्चवर्गीय नारी परित्यक्त होने पर भी शिक्षा, कला, नौकरी आदि में समय व्यतीत कर लेती है या पुनर्विवाह कर नया जीवन प्रारंभ कर लेती है। निम्नवर्गीय नारी नैतिकता के बंधनों को झटक अन्य पुरुष के साथ घर बसा लेती है। उसकी कर्मठता और स्वावलम्बन उसका सहारा बनता है। सबसे अधिक दुर्दशा उस मध्यवर्गीय नारी की होती है जो लोकापवाद के कारण पुनर्विवाह नहीं कर पाती। स्वावलम्बी न होने के कारण उसका अन्तिम विकल्प आत्मघात बनता है। प्रेमचन्द ने तीनों ही वर्गों के नारी चरित्रों द्वारा इस समस्या को विवेचित किया है और इसके लिए कभी पुरुष तो कभी नारी को उत्तरदायी ठहराया है।

'निर्वासन' की मर्यादा मेले में पति से बिछुड़ने पर छह दिन स्वयंसेवकों, दलालों और बुढ़िया कुटनी से आत्मरक्षा के लिए संघर्ष करती है किन्तु मिलने पर पति उसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता क्योंकि नारी का एक रात भी घर से बाहर रहना वह उचित नहीं समझता। उसकी करुण व्यथा-कथा तथा पुत्र की सौगन्ध भी जब रूढ़िग्रस्त और शंकालु पति को तुष्ट नहीं कर पाती तो उसे विवश होकर घर छोड़ना पड़ता है। 'शूद्रा' कहानी की गौरा भी मंगरू की रूढ़िग्रस्त, शंकालु प्रवृत्ति और लोकापवाद के डर से निर्दोष होने पर भी त्यागी जाती है। 'सोहाग का शव' में केशव सुभद्रा का अशिक्षित होने के कारण परित्याग कर उर्मिला से विवाह करता है। इसके विपरीत 'आभूषण' कहानी में सुरेशसिंह की पत्नी स्वयं ही घर छोड़कर चली जाती है। 'घर जमाई' कहानी की गुमानी अपने स्वार्थी भाइयों और अभिभावकों के साथ मिलकर अपने पति हरिधन को लांछित-तिरस्कृत करती है और इस प्रकार अपनी अदूरदर्शिता और अव्यावहारिकता के कारण परित्यक्त होती है।

(आ) कुटिल स्वभाव और आचरण : यद्यपि पुरुष और स्त्री का सम्मिलित सहयोग और परस्पर सद्भाव ही परिवार को सुखी बनाता है तथापि पुरुष का कार्यक्षेत्र समाज होता है, इसलिए उसके आचरण या चरित्र से परिवार कम प्रभावित होता है। इसके विपरीत नारी का कार्यक्षेत्र घर है, अतः परिवार में उसकी भूमिका पुरुष की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। वह चाहे तो अपने प्रेम, सेवा, त्याग आदि से उसे स्वर्ग बना सकती है अथवा उसे विषाक्त और नरकतुल्य भी कर सकती है। कहीं-कहीं नारी की स्वयं की दमित मनोवृत्ति, कर्कशता, अभिमान, रूढ़िग्रस्तता, कुंठा और लिप्सा भी उसके दाम्पत्य जीवन को असह्य बना देती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कुछ नारियाँ अपनी इच्छाओं का इस सीमा तक हनन कर डालती हैं कि उनका स्वयं का कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता। यद्यपि इसके मूल में भी कहीं उनका अशिक्षित होना तो कहीं आर्थिक दृष्टि से पुरुष पर अवलम्बित रहना ही होता है। बहुधा ऐसी बुद्धिहीना जड़ नारियाँ धृतराष्ट्रवत् अपने पति की आँखों से ही संसार को देखती-समझती हैं। वे उनके दोषों को जानबूझ कर अनदेखा कर, हाँ-में-हाँ मिलाती दासीवत् जीवन जीती हैं। ऐसी नारियाँ यद्यपि स्वयं को सुखी समझती हैं तथापि वे वास्तव में दायित्व-च्युत होती हैं और एक-न-एक दिन अपनी जड़ता का दुष्परिणाम भोगती हैं। 'नैराश्य लीला' की जागेश्वरी तथा 'आगा-पीछा' की भगतराम की माँ ऐसी ही नारियाँ हैं।

प्रेम, विनय और सद्भावना नारी के गुण होने चाहिएँ। इनसे वंचित स्त्रियाँ अपनी रुक्षता और अहंकार के कारण दु:ख पाती हैं। 'शान्ति' में मनचले और स्वेच्छाचारी केदारनाथ की पत्नी सुनीता का जीवन भी समतल नहीं है'किन्तु वह अपने पति को विनय और प्रेम से नहीं सौन्दर्य और अभिमान से जीतना चाहती है। परिणामत: प्रतिदान में पाती है उपेक्षा और घृणा। पति के ऐक्ट्रेस के साथ भाग जाने पर वह यमुना में जल-समाधि ले लेती है। 'अग्नि समाधि' की परिश्रमी रुक्मिन अकर्मण्य, शराबी और विलासी प्रयाग की आवश्यकताओं से तंग आकर उससे कठोरता और कर्कशता से व्यवहार करती है। पुरुष अपनी आलोचना और तिरस्कार सहने का आदी नहीं होता। उसे सद्भावना जीत सकती है, तानाशाही नहीं। प्रयाग उसे छोड़कर चला जाता है और जब लौटता है तो उसकी सौत को लेकर। क्षुब्ध, अपमानित और लांछित रुक्मिन खेत में बनी मड़ैया में आग लगा देती है और स्वयं भी उसमें जल मरती है।

कुछ नारियाँ सामान्यत: कर्कशा नहीं होतीं किन्तु सौत अथवा सास, जिठानी, ननद, भौजाई आदि के रूप में अत्यंत निष्ठुर बन जाती हैं। 'अग्नि समाधि' की सिलिया तथा रुक्मिन दोनों ही अपने कर्कश स्वभाव के कारण प्रेम से नहीं रह पातीं। रुक्मिन पहले से ही रुक्ष स्वभाव की थी, सौत के आने पर उसमें वृद्धि हो जाती है। परिणामत: वह पति द्वारा पीटी, अपमानित और लांछित की जाती है और अन्तत: अग्निसमाधि लेने के लिए विवश होती है। 'सौत' कहानी की गोदावरी तथा गोमती भी परस्पर प्रेम से नहीं रह पातीं। नि:संतान गोदावरी पति को दूसरा विवाह करने के लिए बाध्य करती है, किन्तु सौत के आते ही उस पर सास की तरह शासन करने लगती है। सौत के प्रति पति का झुकाव तथा सौत की उपेक्षा उसे रोष से भर देती है और वह गंगा में कूदकर प्राण त्याग देती है। इसके विपरीत 'उन्माद' कहानी की बागेश्वरी अपनी सौत जेनी से भी तब दुर्व्यवहार करती है जब वह प्रतिहिंसा पर उतर आती है।

प्रेमचन्द ने यद्यपि सास के रूप में नारी को अपनी कहानियों में केन्द्र में नहीं रखा है तथापि 'तेंतर' कहानी के कथा-नायक की अम्मा जी, 'धिक्कार' की मानी की सास, 'घास वाली' की मुलिया की सास, 'अलग्योझा' कहानी की पन्ना, 'गृहनीति'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

के कथानायक की माँ, 'स्वर्ग की देवी' की लीला की सास, 'नैराश्य' की निरुपमा की सास, 'आभूषण' की शीतला की सास नारी-चरित्र में सास रूप में आने वाली दुर्बलताओं से युक्त हैं। इनमें से 'तेंतर', 'गृहनीति', 'स्वर्ग की देवी' और 'नैराश्य लीला' में सासें रूढ़िग्रस्त और अंधविश्वासी हैं। 'घासवाली' की मुलिया की सास कर्कशा और कठोर शासन करने वाली है जो अपनी रूढ़िवादी कुप्रथाओं, अंधविश्वास, अज्ञान और निरंकुशता से सम्पूर्ण परिवार को दुःखी कर देती है। लेखक ने 'धिक्कार' की मानी के रूप में एक प्रगतिशील और स्नेहमयी आदर्श सास को प्रस्तुत कर अपनी धारणा और अपेक्षा को ही व्यक्त किया है। जिठानी, भाभी और ननद के रूप में भी नारी की रुक्षता पारिवारिक सुख-शांति को नष्ट कर देती है। 'स्वामिनी' कहानी की रामप्यारी आदर्श जिठानी है। 'नैराश्य लीला' की निरुपमा की भाभी, 'कुलीना' की जुझारसिंह की पत्नी, 'बड़े घर की बेटी' की आनन्दी, 'रानी सारन्धा' की शीतला देवी आदर्श भाभियाँ हैं जो अपने परिवारों को निरन्तर सुख-शान्ति की ओर ले जाती हैं। इसके विपरीत 'अलग्योझा' की मुलिया तथा 'दो भावजें' की दो भावजें अपने ईर्ष्यालु और रुक्ष स्वभाव से सबका जीवन दूभर बनाती हैं।

रूढ़िग्रस्त और अंधविश्वासी नारियाँ यथा 'सद्गति' की पंडिताईन, 'सुहाग की साड़ी' की गौरा, 'दुर्गा का मन्दिर' की भामा, 'तेंतर' की दामोदर दत्त की पत्नी अपने दाम्पत्य को विषाक्त बना लेती हैं। लेखक ने ऐसी नारियों के माध्यम से अशिक्षा, रूढ़ि, अंधविश्वास आदि समस्याओं का विवेचन किया है। इन कहानियों में उनका ध्यान चरित्रविशेष पर केन्द्रित न रहकर समस्याविवेचन पर टिका रहा है।

कुंठाग्रस्त मानसिकता भी दाम्पत्य जीवन को विषाक्त करती है क्योंकि ऐसी नारियों में अनर्गल शंका, प्रतिहिंसा, ईर्ष्या आदि विकार आ जाते हैं। 'अनिष्ट शंका' की मनोरमा पति के अनिष्ट की शंका से उद्विग्न रहती है ओर ऐसी ही विक्षिप्त दशा में रेल से कूदकर प्राण दे देती है। 'गृहदाह' की देवप्रिया ईर्ष्या और सौतिया डाह से पीड़ित होने के कारण सौतेले पुत्र सत्यप्रकाश के साथ ही अपने पुत्र ज्ञानप्रकाश का जीवन नष्ट करती है तथा स्वयं भी विष खाकर मरती है। 'अभिलाषा' की कामिनी पति-प्रेम में शैथिल्य आने की संभावना से त्रस्त और भयभीत रहती है। लेखक ने ऐसी नारियों को या तो सन्मार्ग पर लौटते दिखाया है अथवा उनका त्रासद अन्त दिखाकर दूसरों को सुसम्मति दी है।

कुंठा के सदृश ही लिप्सा भी, चाहे वह किसी भी प्रकार की क्यों न हो, जीवन को असंतुलित और विषम बना देती है। इस मनोरोग से ग्रस्त व्यक्ति अविवेकी हो जाता है। प्रेमचन्द ने कुछ नारियों को मुक्त भोग, वैभव-विलास, आभूषण, संतान आदि की लिप्सा के कारण विषम दाम्पत्य जीवन जीते दिखाया है। 'ममता' कहानी की चरितनायिका अतिशय भोग-विलास की लिप्सा से ग्रस्त होने के कारण इतना व्यय करती है कि उसका पति दिवालिया हो जेल चला जाता है। उसके पश्चात् भी उसकी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आँखें नहीं खुलतीं और वह अपने क्रोध, प्रतिहिंसा और अदूरदर्शिता से उसके कारागार की अवधि को बढ़ाती जाती है। 'प्रेम का उदय' कहानी की बंटी आभूषण, वस्त्र, दारू और मिठाई की लिप्सा से ग्रस्त होने के कारण पति भोंदू कंजड़ को चोरी के लिए बाध्य करती है। 'ग़रीब की हाय' की नागिन धनलिप्सा के कारण पति रामसेवक को विधवा मूँगा के ढाई सौ रुपये हड़पने के लिए उकसाती है और अन्त में मूँगा के भय से मानसिक विकृति और सन्निपात से ग्रस्त हो मर जाती है। 'मृत्यु के पीछे' की मानकी भी धन और वैभव-विलास की लिप्सा के कारण संयमित और संतुलित जीवन व्यतीत करने वाले पति से तालमेल नहीं बिठा पाती। 'लोकमत का सम्मान' कहानी की बेचू धोबी की पत्नी आभूषण-लिप्सा को शांत करने के लिए धुलने आए कपड़ों को किराये पर देने लगती है और पति को इसके लिए प्रेरित करती है। 'कौशल' कहानी की माया अपनी आभूषण-लिप्सा को शांत करने के लिए पड़ोसिन का हार चोरी होने की कथा गढ़कर पति से हार तो पा लेती है पर उसका सुख-चैन हर लेती है। इसी प्रकार 'आभूषण' की शीला की आभूषण-लिप्सा उसे वैधव्य की अग्नि में झोंक देती है।

उच्च, मध्य तथा निम्नवर्गीय नारियों में यह लिप्सा समान रूप से पायी जाती है, किन्तु उच्च वर्ग में धनाभाव न होने से यह समस्या का रूप नहीं लेती। निम्नवर्गीय नारी अपनी आर्थिक दुरवस्था से अवगत होती है, अतः वहाँ भी यह अधिक जटिल रूप नहीं ले पाती। किन्तु मध्यवर्गीय आर्थिक स्थिति के अनिश्चित और डाँवाडोल होने तथा उसमें उच्च वर्ग के प्रति प्रतिस्पर्धा तथा मिथ्या प्रदर्शन का भाव होने से यह लिप्सा अपनी तुष्टि के लिए चोरी, छल, झूठ, प्रवंचना आदि का अवलम्ब लेने के लिए बाध्य कर देती है। प्रेमचन्दयुगीन नारी आभूषण को अपने विवाहित जीवन के सुख और आनन्द का प्रतीक मानती थी, अतः उसका अभाव या हानि उसे अशक्त और दुःखी कर देता था। 'लांछन' कहानी की नायिका, रूप-प्रशंसा सुनने की लिप्सा के कारण, मुन्नू मेहतर और उसके साथी रज़ा के चंगुल में फँस अपने पति के सन्देह का पात्र बनती और दुःखी होती है। 'भूत' की मंगला कन्या-प्राप्ति की लिप्सा के कारण तथा 'सौत' की निःसंतान गोदावरी सन्तान-लिप्सा के कारण अपनी सुख-शांति नष्ट कर लेती हैं। आदर्शवादी होने के कारण प्रेमचन्द इनमें से कुछ को तो हृदय-परिवर्तन द्वारा लिप्सा-मुक्त कर देते हैं। 'प्रेम का उदय' की बंटी को अपराध-बोध से ग्रस्त भोंदू की दुर्दशा इतनी विचलित कर देती है कि वह जाति की मर्यादा को छोड़कर अपनी सेवा, त्याग और प्रेम से उसे पुनः स्वस्थ कर लेती है। जहाँ ऐसा संभव नहीं हुआ वहाँ प्रेमचन्द उन्हें दंडित दिखाकर लिप्सा के दुष्परिणाम से परिचित कराके अन्यों को उस मार्ग से बचे रहने की प्रेरणा देते हैं।

प्रेमचन्द की कुछ नारियाँ अपने विद्रोही स्वभाव के कारण पति के प्रतिकूल हो अपना दाम्पत्य सुख खो देती हैं। 'पाप का अग्निकुण्ड' की राजनंदिनी अपनी सखी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ब्रजविलासिनी तथा गाय की हत्या करने के कारण अपने पति धर्मसिंह की हत्या कर स्वयं भी सती हो जाती है। 'कुसुम' की कुसुम धन-लोभी पति से पृथक् रहने का संकल्प करती है। 'सती' की चिंता भी रणक्षेत्र से भागे पति के प्रति विमुख हो सती हो जाती है।

3. माता

मातृत्व नारीत्व की चरमोपलब्धि है, उसके वैवाहिक जीवन की पूर्णता और सार्थकता है। प्रेमचन्द के अनुसार उसकी जन्मगत प्रयोजनशीलता, साधना और तपस्या की सिद्धि भी उसके इसी रूप में होती है।[1] अत: इसको प्राप्त करने के लिए वह गर्भावस्था को भी मंगल और आनन्दमय मान सहर्ष स्वीकारती है। वंशरक्षा के लिए नवीन सृष्टि की जन्मदात्री होने के आत्मगौरव से तुष्ट और आश्वस्त वह गर्भावस्था और प्रसवकाल की पीड़ा को भी असीम धैर्य से वहन करती है। मनोवांछित सन्तान की प्राप्ति उसके अहं को तिरोहित कर उसे सहज मातृत्वजनित कोमलता से भर देती है। वेदों में नारी को पृथ्वीस्वरूपा माना गया है। वंश-रक्षा के लिए सन्तान को जन्म देना, उसका लालन-पालन करना ; उसे अन्त तक संरक्षण देकर उसकी उन्नति में योग देना ही मातृत्व का आदर्श है। मातृत्व का स्नेह-बन्धन अत्यन्त दृढ़ होता है। मातृ ऋण से उऋण होना असंभव है। बच्चे के सम्यक् विकास में माँ की अपरिहार्य भूमिका होती है।

प्रेमचन्द ने 'माता का हृदय', 'धिक्कार', 'महातीर्थ', 'बेटों वाली विधवा' आदि कहानियों में माता के विभिन्न रूपों से सम्बद्ध झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। उनकी नारी अपने इसी मातृत्व भाव के कारण पुरुष से कहीं अधिक श्रेष्ठ और वन्दनीय है। आयु के साथ-साथ उसका समस्त नारीत्व और पत्नीत्व भी इसी में तिरोहित हो जाता है किन्तु पुरुषों में यह अवस्था, ऐसा संयम कभी नहीं आता।[2] नि:सन्तान स्त्रियाँ स्वयं तो अतृप्त और दु:खी रहती ही हैं, वे पति, परिवार और समाज द्वारा भी उपेक्षित और तिरस्कृत होती हैं। कहीं बहुविवाह-प्रथा, विवाह-सम्बन्ध-विच्छेद, पत्नी-परित्याग आदि का कारण भी बनती है।

प्रेमचन्द द्वारा चित्रित मातृत्व के आदर्श रूप के व्यावर्तक गुण हैं—वात्सल्य, त्याग, सहिष्णुता, आत्माभिमान आदि। उन्हें उन्हीं के अन्तर्गत रखकर विवेचित करना

---

1. "नारी केवल माता है और उसके उपरान्त वह जो कुछ है सब मातृत्व का उपक्रम मात्र है। मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान विषय है। एक शब्द में उसे लय कहूँगा—जीवन का, व्यक्तित्व का और नारीत्व का भी।"—गोदान, पृष्ठ 167
2. "···नारी-चरित्र में अवस्था के साथ मातृत्व का भाव दृढ़ होता जाता है। यहाँ तक कि एक समय ऐसा आता है जब नारी की दृष्टि में युवकमात्र पुत्र तुल्य हो जाते हैं।···किन्तु पुरुषों में यह अवस्था कभी नहीं आती। उनकी कर्मेन्द्रियाँ क्रियाहीन भले हो जाएँ पर विषय-वासना संभवत: और भी बलवती हो जाती है।"—मानसरोवर, भाग 4, 'भूत' कहानी, पृष्ठ 175

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उचित होगा।

(अ) मातृत्व का आदर्श रूप

अपने रक्त से पोषित सन्तान के लालन-पालन, सुरक्षा तथा प्रगति के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर देनेवाली तथा विषम परिस्थितियों में भी हार न माननेवाली माताएँ ही आदर्श सफल माताएँ होती हैं। उनमें मुख्यत: निम्नलिखित भाव विद्यमान रहते हैं—

(क) अप्रतिम वात्सल्य-भाव—ममता का पर्याय माँ है। वात्सल्य का अक्षय स्रोत कभी नहीं चुकता। वह उसके लिए बड़े-से-बड़ा कष्ट भी सहन करती है। 'त्यागी का प्रेम' में आनन्दी बाई अपने दुर्बल शिशु को घोर अर्थाभाव में भी पूरी तन्मयता से पालती-पोसती है। माँ के मन में पुत्र तथा पुत्री दोनों के लिए समान ममत्व होता है। पति, परिवार और समाज की दृष्टि चाहे जो हो किन्तु उसके लिए वह अमूल्य निधि होती है। पुत्री के लालन-पालन में तो वह पुत्र की अपेक्षा अधिक सतर्कता बरतती है। कुदृष्टि से बचाते हुए वह पुत्री को सर्वगुण-सम्पन्न बनाकर उसका योग्य वर के साथ विवाह करना चाहती है। 'शांति' कहानी की गोपा, 'शूद्रा' कहानी की गंगा तथा 'आगा-पीछा' की कोकिला ऐसी ही माताएँ हैं।

'शांति' कहानी में गोपा पति की मृत्यु के उपरान्त भी पुत्री के लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा में किसी प्रकार की कोई कसर नहीं छोड़ती, चाहे उसके भाग्य के अंक मिटाने में असमर्थ होने के कारण उसे अन्त में पुत्री-शोक वहन करना पड़ता है। 'शूद्रा' की गंगा भी वैधव्य को भूल अपनी बेटी के साथ भाड़ झोंककर जीविकोपार्जन करती है तथा उसके लालन-पालन में पूर्ण सतर्कता बरतती है। 'आगा-पीछा' कहानी की कोकिला अपनी पुत्री को वेश्यालय के पंकिल परिवेश से मुक्त रखने के लिए स्वयं वेश्यावृत्ति त्याग देती है तथा उसे उच्च शिक्षा दिलाकर समाज में गृहिणी का मर्यादित पद दिलाने का प्रयास करती है। 'डामुल का कैदी' में प्रमिला पति को जेल हो जाने के पश्चात् पुत्र प्राप्त करती है और अथक परिश्रम और धैर्य से उसे पालती-पोसती और बड़ा करती है। इसी भाँति 'माँ' कहानी में करुणा भी आदित्य के जेल जाने के पश्चात् ही प्रकाश को जन्म देती है। घोर निर्धनता भी उसे कर्त्तव्य-च्युत नहीं करती।

(ख) त्याग और सहिष्णुता—वात्सल्य का भाव नारी को त्याग और सहिष्णुता के गुणों से मुक्त कर देता है। वह सन्तान के लिए अपना सर्वनाश करने तक में नहीं हिचकती।[1] वस्तुत: "वह दया का आगार है। उसे जलाओ तो दया की सुगन्ध और पीसो तो भी दया का ही रस निकलता है।"[2]

---

1. "माँ सदा ही सन्तान के लिए अपना सर्वनाश करती आई है। यह उसके जीवन में बहुत बड़ा अभिशाप है जो सदा बना रहेगा।" —मातृत्व का अभिशाप, विश्वनाथ वैशम्पायन, पृष्ठ 160
2. मानसरोवर , भाग 3 पृष्ठ 103

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

'महातीर्थ' कहानी की सुखदा एक आदर्श पत्नी और उदार मालकिन चाहे न हो, किन्तु एक ममतामयी माँ अवश्य है। वह पुत्र रुद्रमणि की धाय की नीयत पर शंका होते ही उसे तिरस्कृत कर निकाल देती है। पुत्र के प्राण धाय में बसते हैं तो वह निरन्तर उसके लिए रोते-रोते बीमार पड़ जाता है। नई धाय भी उसे स्वस्थ नहीं कर पाती। तब सुखदा पति का तनिक-सा संकेत पाते ही अपना सारा सम्मान और स्वामित्व छोड़ उसके पास जाने के लिए तैयार हो जाती है—''मैंने लाज के मारे तुमसे कहा नहीं, पर मेरे हृदय में बार-बार यह बात उठी है। यदि मुझे दाई के मकान का पता मालूम होता, तो मैं कब की उसे मना लाई होती।...तुम विनती करने को कहते हो, मैं उसके पैरों पड़ने के लिए तैयार हूँ। उसके पैरों को आँसुओं से भिगोऊँगी और जिस तरह राज़ी होगी करूँगी।''[1]

'बेटों वाली विधवा' में फूलवती अपने चार योग्य पुत्रों और आज्ञाकारी सेवाशील पुत्रवधुओं को देख वैधव्य के कठोर आघात को सहने की शक्ति सँजोती है। किन्तु पति की तेरहवीं के दिन ही उसे स्पष्ट हो जाता है कि उसका स्वामित्व अब नहीं रहा। अपनी आज्ञा का उल्लंघन और उपेक्षा, प्रबन्ध में कमी और अव्यवस्था और अन्तत: शाक में से मरी चुहिया के निकलने पर पंगत का भूखे उठ जाना उसकी क्षोभ-अग्नि में घृत का काम करता है। अविवाहित बहिन कुमुद के विवाह में व्यय न करना पड़े, इसलिए चारों पुत्र उसका विवाह वृद्ध से करना चाहते हैं। दयानाथ एक लेख के कारण मानहानि के अपराध में जेल भेजे जाने की मनगढ़न्त कहानी सुनाकर फूलमती से उसके आभूषण भी हड़प लेता है। अपमान और वात्सल्य के द्वन्द्व में फूलमती के वात्सल्य का पलड़ा ही अधिक भारी पड़ता है। वह कहती है—''मेरे जीते-जी तुम्हें कौन गिरफ़्तार कर सकता है। उसका मुँह झुलस दूँगी। गहने इसी दिन के लिए हैं या किसी और दिन के लिए। जब तुम्हीं न रहोगे तो गहने लेकर क्या आग में झोंकूँगी ?''[2] उसके संकोच को दूर करते हुए वह कहती है—''क्या तुम समझते हो, मुझे गहने तुमसे ज़्यादा प्यारे हैं ? मैं तो अपने प्राण तक तुम्हारे ऊपर न्यौछावर कर दूँ, गहनों की बिसात ही क्या है।''[3]

'मृतक भोज' कहानी की सुशीला पति की मृत्यु के उपरान्त मृतक भोज की व्यवस्था के लिए मकान, आभूषण सब बेच देती है और किराये के मकान में रहने लगती है। समय पर किराया न दे पाने पर पचासवर्षीय मकान-मालिक झाबरमल द्वारा उसकी पन्द्रह वर्षीय पुत्री रेवती से विवाह-प्रस्ताव को वह दृढ़तापूर्वक ठुकराकर घर

---

1. मानसरोवर, भाग 7, पृष्ठ 191
2. वही, भाग 1, पृष्ठ 63
3. वही, पृष्ठ 63

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

खाली कर देती है तथा एक ग़रीब खटीकन के यहाँ आश्रय लेती है। एकमात्र पुत्र मोहन का ज्वरग्रस्त होना उसके धैर्य को तोड़ देता है। वह ईश्वर से प्रार्थना करती है— 'भगवान् यही मेरे जन्म की कमाई है। अपना सर्वस्व खोकर भी मैं बालक को छाती से लगाए हुए सन्तुष्ट थी, लेकिन यह चोट न सही जाएगी। तुम इसे अच्छा कर दो, इसके बदले मुझे उठा लो।''[1] और भगवान् भी उस निरीह माता की गुहार को अनसुना नहीं कर पाता। मोहन स्वस्थ हो जाता है तथा वह हमेशा के लिए सो जाती है।

'अलग्योझा' कहानी की पन्ना पति की मृत्यु के पश्चात् सौतेले पुत्र रग्घू के प्रति दायित्व का निर्वाह कर उसे अपना ही नहीं लेती, बल्कि उसकी पत्नी मुलिया से भी भरसक निभाने की कोशिश करती है। वह रग्घू की मृत्यु के बाद मुलिया का विवाह अपने पुत्र केदार से कर रग्घू के संयुक्त परिवार के अधूरे स्वप्न को भी पूर्ण कर देती है। 'खून सफेद' की देवकी अपने पुत्र साधो के अपहरण से दुःखी होती है। जब चौदह वर्ष पश्चात् साधो ईसाई बनकर लौटता है तो गाँव का मुखिया उसे घर में रखने की अनुमति देने के साथ ही खान-पान सम्बन्धी छुआछूत का ध्यान रखने की चेतावनी भी देता है। पुत्र की ज़िद पर देवकी पुत्र को अपने साथ थाली में खिलाने के लिए तैयार हो जाती है, चाहे उसे बहिष्कृत ही क्यों न होना पड़े।

'आगा-पीछा' में भगतराम की माता अपने पुत्र की प्रसन्नता के लिए वेश्या-पुत्री श्रद्धा को भी पुत्रवधू के रूप में स्वीकारने को तैयार हो जाती है। वह पुत्र के लिए मानापमान को भी ताक पर रख देती है। यद्यपि वह कहानी में मुख्य पात्रा नहीं है, तथापि उसका चरित्र अनुकरणीय है। 'गुप्त धन' में मगनसिंह की निर्धन, विधवा और बीमार माँ चाहकर भी अपने एकमात्र पुत्र को लाड़-प्यार नहीं दे पाती। मगन को स्वयं मज़दूरी करके जीविकोपार्जन करना और पकाना-खाना पड़ता है। अन्तिम समय में उसके मालिक को बुलाकर उसकी माता एक काग़ज़ सौंपती है जिसमें उसके पूर्वजों द्वारा गाड़े गए धन का ब्यौरा है तथा उसे प्राप्त कर पुत्र की सहायता करने का अनुरोध करती है। मृत्यु के समय भी वह सन्तान की चिन्ता से ही दुःखी रहती है।

'ममता' कहानी में सेठ रामरक्षा पिता की मृत्यु के पश्चात् पत्नी को गृह-क्लेश से बचाने के लिए अपनी विधवा माँ के नाम दस हजार रुपया जमा कर स्वयं पृथक् रहने लगते हैं। पुत्रवधू के आचरण से क्षुब्ध माता अयोध्या चली जाती है। यद्यपि रामरक्षा पत्नी से छुपाकर माँ से मिलते हैं, तथापि उसे लाकर साथ रखने का मनोबल नहीं जुटा पाते। रामरक्षा दिवालिया हो जाते हैं तथा लेनदार सेठ गिरधारी उनका घर, दूकान नीलाम कराने के पश्चात् भी बकाया पैसों के लिए उन्हें जेल भिजवा देते हैं। उक्त घटना का समाचार माँ को पुत्र के प्रति चिन्तित कर देता है। वह अयोध्या से आकर सेठ

1. मानसरोवर, भाग 4, पृष्ठ 171

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गिरधारी को मना लेती है। उसे सरकारी नौकरी और सम्मान का लोभ देकर तथा बकाया धन के लिए अपनी समस्त संचित पूँजी देकर वह पुत्र को छुड़ा लेती है। लेखक ने स्पष्ट किया है कि चाहे संतान कहीं भी रहे, माता उसकी हितचिन्ता ही करती है तथा आवश्यकता पड़ने पर अपने कर्त्तव्य से च्युत नहीं होती।

'शेख मखमूर' में मसऊद की माँ रिन्दा जंगलों में रहते हुए भी निर्वासित शहज़ादे को इस तरह पालती है कि वह बड़ा होकर अपने पिता के ताज का योग्य उत्तराधिकारी बन सके। वह वन में प्रतीक्षा करती है। मसऊद उसके आदर्शों के अनुरूप बनकर और जन्नतनिशां पर विजय पाकर भी जब अपनी प्रेमिका के कारण अपने शहज़ादा होने का भेद नहीं खोलता तो एक दिन वह पति का ताज लेकर वहाँ आती है। वह पुत्र को पाकर निहाल हो जाती है तथा उसे ताज पहने सिंहासनारूढ़ देखकर प्राण त्याग देती है। सन्तान की अनिष्ट-आशंका से ही 'न्याय' की खुदैजा और 'सुभागी' की लक्ष्मी दुःखी रहती हैं तथा अपनी सन्तानों को उनसे बचाने का प्रयास करती हैं। ये भी कहानियों में मुख्य पात्राओं के रूप में नियोजित नहीं हैं।

स्वयं माता न बन पाने वाली स्त्रियों में भी ममत्व का अभाव नहीं होता। वे दूसरों के बालकों को अपना सहज स्नेह देती हैं। प्रेमचन्द ने ऐसी स्त्रियों के वात्सल्य को अधिक उत्कृष्ट माना है। 'महातीर्थ' कहानी में धाय कैलासी संसार में अकेली थी। किसी समय उसका परिवार गुलाब की तरह खिला हुआ था,परन्तु धीरे-धीरे उसकी सब पत्तियाँ गिर गईं : "अब उसकी सब हरियाली नष्ट-भ्रष्ट हो गई, और अब वही एक सूखी टहनी उस हरे-भरे पेड़ का चिह्न रह गई थी, परन्तु रुद्र को पाकर इस सूखी टहनी में जान पड़ गई थी। इसमें हरी-भरी पत्तियाँ निकल आई थीं। वह जीवन जो अब तक नीरस और शुष्क था, अब सरस और सजीव हो गया था। अँधेरे में भटकते हुए पथिक को प्रकाश की झलक आने लगी। अब उसका जीवन निरर्थक नहीं, बल्कि सार्थक हो गया था।"[1] और जब उसी बालक से वह सहसा पृथक् कर दी जाती है तो उसकी दशा 'थिएटर में एकाएक बिजली के लैम्पों के बुझ जाने से दर्शकों'[2] जैसी हो जाती है। उसका विशुद्ध प्रेम आहत हो उठता है। जब उसे उसकी रुग्णता का समाचार मिलता है तो वह अपनी तीर्थयात्रा स्थगित कर वहाँ पहुँच जाती है और उसे स्वस्थ कर सारे महातीर्थों का पुण्य एक साथ पा लेती है।

इसी प्रकार 'माता का हृदय' कहानी में विधवा माधवी का एकमात्र पुत्र अत्यंत निर्भीक, स्पष्टवादी, साहसी, स्वदेश-प्रेमी, निःस्वार्थ और कर्त्तव्यपरायण था। अपने सेवा-कार्य और राजनीतिक लेखों के कारण वह सरकारी कर्मचारियों की आँख का

1. मानसरोवर, भाग 7, पृष्ठ 192
2. देखिए : वही, पृष्ठ 192

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

काँटा बन गया था, अत: उसे निरपराध होते हुए भी एक डाके के अपराध में आठ वर्ष के लिए कठोर कारावास दण्ड दे दिया गया। माधवी की घोर आत्मवेदना ने उसमें तीव्र प्रतिशोध-भाव उत्पन्न कर दिया और वह पुलिस सुपरिन्टेन्डेंट बागची के यहाँ धाय रूप में काम करने लगती है। किन्तु वहाँ की निर्धनता, श्रीमती बागची की पीड़ा, बागची की मदिरा की लत आदि देखकर स्वयं को अभागिनी मानना बन्द कर देती है। निरन्तर साहचर्य के कारण उसे बच्चे से स्नेह हो जाता है। उसके रुग्ण होने पर "माता सोती, पिता सो जाता, किन्तु माधवी की आँखों में नींद न थी। खाना-पीना तक भूल गई। देवताओं की मनौतियाँ करती थी, बच्चे की बलाएँ लेती थी, बिल्कुल पागल हो गई थी। यह वही माधवी थी, जो अपने सर्वनाश का बदला लेने आई थी। अपकार की जगह उपकार कर रही थी। विष पिलाने आई थी, सुधा पिला रही थी।"[1] उसकी अथक सेवा देखकर दम्पत्ति बालक की दीर्घायु की कामना से उसे माधवी को ही दे देने का निश्चय करते हैं—"इसे तुम आज से अपना बच्चा समझो। तुम्हारा होकर शायद बच जाय। हम अभागे हैं। हमारा होकर इस पर नित्य कोई-न-कोई संकट आता रहेगा। आज से तुम इसकी माता हो। जाओ, तुम इसे अपने घर ले जाओ। जहाँ चाहे ले जाओ। तुम्हारी गोद में देकर मुझे फिर कोई चिन्ता न रहेगी। वास्तव में तुम्हीं इसकी माता हो। मैं तो राक्षसी हूँ।"[2] माधवी के ले जाने से पूर्व मौत उस बच्चे को ले जाती है। माँ-बाप का तड़पना, बिलखना तो स्वाभाविक था, किन्तु माधवी की दशा भी दयनीय थी—"यदि अपने प्राण देकर वह बालक को जिला सकती, तो इस समय अपना धन्य भाग समझती। वह अहित का संकल्प करके यहाँ आई थी और आज जब उसकी मनोकामना पूरी हो गई, और उसे खुशी से फूला न समाना चाहिए था, उसे उससे कहीं घोर पीड़ा हो रही थी, जो अपने पुत्र की जेल-यात्रा से हुई थी। रुलाने आई थी और खुद रोती जा रही थी।"[3]

कहानीकार ने पूर्व-निश्चित अभिकल्प के अनुसार माधवी के चरित्र के प्रतिशोध भाव को ममत्व में परिणत कर उसको आदर्श रूप प्रदान किया है। उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि सच्चे प्रेम में प्रतिशोध, प्रतिकार के लिए कोई स्थान नहीं होता। लेखकीय टिप्पणियों ने माधवी के चरित्र को उभारा है।

सन्तान का वियोग माँ के लिए प्राणलेवा सिद्ध होता है। कुछ स्त्रियाँ तो विक्षिप्त हो प्राण तक त्याग देती हैं। 'स्वर्ग की देवी' की धैर्यशाली, पतिनिष्ठा और कर्त्तव्यपरायणा लीला हैजे में एक साथ दोनों बच्चों की मृत्यु होने से विक्षिप्त-सी हो जाती है तथा पति

---

1. मानसरोवर, भाग 3, पृष्ठ 90
2. वही, पृष्ठ 90-91
3. वही, पृष्ठ 92

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

के प्रति भी उदासीन हो जाती है। उसका "स्वास्थ्य पहले भी कुछ अच्छा न था, अब तो वह और भी बेजान हो गई। उठने-बैठने की शक्ति भी न रही। हरदम खोयी-सी रहती। न कपड़े-लत्ते की सुधि थी, न खाने-पीने की। उसे न घर से वास्ता था, न बाहर से...महीनों कपड़े न बदलती, सिर में तेल न डालती। बच्चे ही उसके प्राणों के आधार थे। जब वही न रहे, तो मरना और जीना बराबर था।"[1]

'डामुल का क़ैदी' की प्रमिला पति को काला पानी की सज़ा होने के पश्चात् पुत्र पाकर पति की उस निशानी को सारे कष्ट सहकर भी अत्यंत यत्न से पालती है तथा उसे पिता के सदृश ही परोपकारी, दयालु और सदाशय बनाती है। मज़दूर नेता गोपीचन्द, जिनकी हत्या उसके पति की गोली से हुई, से पुत्र के मुखसाम्य को देख और उसके परिवार के प्रति उसे अधिक सदय देख वह अनिष्ट की शंका से काँप उठती है। पुत्र भी अन्त में मज़दूरों के हक़ के लिए लड़ते हुए मारा जाता है तो उसका धैर्य चुक जाता है, ईश्वर पर से विश्वास उठ जाता है और वह प्राण त्याग देती है। लेखक ने उसके प्रति अपनी निष्ठा और भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की है—"उसी रात शोकातुर माता संसार से प्रस्थान कर गई। पक्षी अपने बच्चे की खोज में पिंजरे से निकल गया।"[2]

'मन्दिर' कहानी की विधवा मज़दूरिन सुखिया का एकमात्र जीवनाधार उसका पुत्र जियावन है जिसे वह घास छीलते और बेचते समय भी हृदय से चिपकाए रखती है। पुत्र के रुग्ण होने पर वह भूखी-प्यासी उसके समीप बैठी रहती है। स्वप्न में मृत पति द्वारा मन्दिर में ठाकुर की पूजा का निर्देश पा वह पुत्र के ठीक होते ही पूजा का संकल्प करती है। पुत्र ठीक हो जाता है किन्तु अधिक गुड़ खा लेने से पुनः बीमार हो जाता है। सुखिया इसे पूजा में होने वाले विलंब के कारण ठाकुर का प्रकोप समझ चाँदी के कड़े गिरवी रखकर पूजा की सामग्री जुटाती है, पर धर्म के ठेकेदार उसे चबूतरे के आगे नहीं बढ़ने देते। पुजारी भी उससे अन्तिम एक रुपया ऐंठ उसे केवल जन्तर देकर भेज देता है, दर्शन नहीं करने देता। रात्रि में ज्वर से तपते पुत्र को लेकर सुखिया पुनः मन्दिर जाती है और मन्दिर का ताला तोड़ दर्शन का प्रयास करती है। ताला टूटने की आवाज़ से जागे पुजारी के पुकारने पर एकत्र लोग मन्दिर भ्रष्ट करने वाली सुखिया पर लात-घूँसों की ऐसी वर्षा करते हैं कि प्रयास करने पर भी बच्चा गिर पड़ता है और मर जाता है। सुखिया बेसहारा हो जाती है। वह भी अपने बच्चे के साथ ही प्राण त्याग देती है। प्रेमचन्द ने उसके लिए कहा है—"माता, तू धन्य है। तुझ जैसी निष्ठा, तुझ जैसी श्रद्धा, तुझ जैसा विश्वास देवताओं को भी दुर्लभ है।"[3]

1. मानसरोवर, भाग 3, पृष्ठ 70
2. वही, भाग 2, पृष्ठ 218
3. वही, भाग 5, पृष्ठ 15

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(ग) सत्प्रेरिका—"जब मैं आठ वर्ष का था, तभी मेरी माँ चली गई। उससे पहले की स्मृति बड़ी धुँधली है। केवल इतना ही ध्यान है कि मेरी दुर्बल माँ कभी तो अत्यंत ममतामयी जान पड़ती थी और कभी समय पड़ने पर कठोर हो जाती थी, जैसा कि सभी अच्छी माताएँ होती हैं।"[1] ये उद्‌गार हैं प्रेमचन्द के जिनकी दृष्टि में आदर्श माता सन्तान की प्रगति और चारित्रिक उत्थान के लिए अपने ममत्व पर संयम और नियन्त्रण रखती है। उनकी चित्रवीथि में अनेक ऐसी गरिमावती और ममता-महिमामयी माताओं के जगमगाते चित्र हैं जिन्होंने अपनी सन्तानों को स्वार्थमय परिवेश से हटाकर मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा और राष्ट्रहित की ओर प्रेरित किया।

'रानी सारन्धा' की सारन्धा अपने प्रिय पुत्र को उसकी पसन्द का घोड़ा दिलाने के लिए मुग़ल सेनापति वली बहादुर को परास्त करती है तथा राज्य और सम्मान को भी भूल जाती है। किन्तु जब वही पुत्र घोड़ा छिन जाने पर बिना प्रतिकार किए लौट आता है तो उसका क्षोभ पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। वह उसे उसकी कायरता के लिए धिक्कारती है—"मुझे इसका शोक नहीं कि घोड़ा हाथ से गया, शोक है कि तू उसे खोकर जीता क्यों लौटा? क्या तेरे शरीर में बुंदेलों का रक्त नहीं है? घोड़ा न मिलता, न सही, किन्तु तुझे दिखा देना चाहिए था कि एक बुन्देला बालक से उसका घोड़ा छीन लेना हँसी नहीं है।"[2] जब ओरछा दुर्ग शत्रुओं द्वारा घेर लिया जाता है और राजा चम्पतराय बिना स्त्री-बच्चों की सुरक्षा सम्बन्धी प्रतिज्ञा-पत्र पाए किला छोड़ने को तैयार नहीं होते तो सारन्धा अपने सर्वप्रिय पुत्र छत्रसाल को नीतिकुशल और वाक्पटु जान प्रतिज्ञा-पत्र लेने भेजती है। वह वीर रमणी भगवान् से उसकी कल्याण-कामना करती है—"दयानिधि, मैंने अपना तरुण और होनहार पुत्र बुन्देलों की आन के आगे भेंट कर दिया। अब इस आन को निभाना तुम्हारा काम है। मैंने बड़ी मूल्यवान् वस्तु अर्पित की है, इसे स्वीकार करो।"[3] एक काग़ज़ के टुकड़े को इतने महँगे दामों में खरीदने वाली सारन्धा नारी जाति और मातृत्व का आदर्श है।

'धिक्कार' कहानी के अनुसार ईरान और यूनान के मध्य होने वाले संग्राम में एक राजद्रोही के कारण यूनान की अत्यंत दुर्दशा हो रही थी। मन्दिर की देववाणी के अनुसार जिस घर से रात को गाने की ध्वनि और दिन में सुगन्ध विकीर्ण हो, जिस पुरुष की आँखों में मद की लाली हो, ऐसे व्यक्ति की खोज की जाने लगी। अन्ततः मन्दिर की पुजारिन का लड़का पासोनियस ही राजद्रोही पाया गया। मन्दिर में छिपे पासोनियस को बाहर निकालने में असमर्थ जनता ने छत ढहा दी, जिससे गर्मी में झुलसते पासोनियस

---

1. प्रेमचन्द : एक विवेचन (परिशिष्ट 2, पत्र 2), डॉ. इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ 176
2. मानसरोवर, भाग 6, पृष्ठ 46
3. वही, पृष्ठ 49

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ने बचने के लिए जनता को ठगने के लिए यूनान को बचाने के लिए भेद बताने का वायदा किया। अपने पुत्र के दुराचरण से अनभिज्ञ किन्तु अब क्षुब्ध माता ने यूनानियों को सचेत किया—अगर तुम्हें अपना देश प्यारा है, अपने पुरुखों का नाम प्यारा है, अपनी माताओं और बहनों की आबरू प्यारी है, तो मन्दिर के द्वार चुन दो, जिसमें देशद्रोही को फिर बाहर निकलने और तुम लोगों को बहकाने का मौका न मिले। यह देखो, पहला पत्थर मैं अपने हाथों से रखती हूँ।''[1]

ऐसी माँ के प्रति विनम्र श्रद्धांजलि व्यक्त करते हुए प्रेमचन्द कहते हैं—''वीर माता, तुम्हें धन्य है। ऐसी ही माताओं से देश का मुख उज्ज्वल होता है, जो देशहित के सामने मातृ-स्नेह की धूल बराबर भी परवाह नहीं करतीं। उनके पुत्र देश के लिए होते हैं, देश पुत्र के लिए नहीं होता।''[2]

'शांति' कहानी की गोपा अपनी एकमात्र पुत्री सुनीता उर्फ़ सुन्नी को समस्त अभाव सहकर भी उच्च शिक्षा दिलाती है तथा अपने सामर्थ्य से अधिक व्यय कर उसका विवाह भी करती है। भाग्य के अंक किसने पढ़े हैं ? गोपा के समस्त प्रयत्नों के बावजूद सुनीता का दाम्पत्य जीवन विषम रहता है। कामुक, विलासी और स्वेच्छाचारी पति को लांछित, अपमानित और तिरस्कृत कर उसके एक ऐक्ट्रेस के साथ भाग जाने पर वह आत्महत्या कर लेती है। गोपा उसकी मृत्यु से विचलित होने के विपरीत सतीत्व-रक्षा, स्वाभिमान और मर्यादा की रक्षा के लिए उसके प्राणोत्सर्ग से तुष्ट हो स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करती है—''जिन पैरों ने उसे ठुकरा दिया,उन्हें वह कभी न सहलाएगी। उसे अपना बनाकर कोई चाहे तो लौंडी बना ले, लेकिन शासन तो उसने मेरा न सहा, दूसरों का क्या सहेगी ?''[3] उसकी पुत्री फूहड़, कटुभाषिणी, आरामतलब तो थी नहीं, फिर यदि उसने आत्म-समर्पण के प्रतिदान में आत्मसमर्पण चाहा तो उसका क्या दोष! वह रोकर उसकी गौरवयमी मृत्यु को अनावृत्त नहीं करना चाहती—''यह मैं नहीं कहती कि मुझे मुन्नी की याद न आएगी और मैं उसे याद करके रोऊँगी नहीं। लेकिन यह शोक के आँसू न होंगे, हर्ष के आँसू होंगे। बहादुर बेटे की माँ उसकी वीरगति पर प्रसन्न होती है। सुन्नी की मौत में क्या कुछ कम गौरव है ? मैं आँसू बहाकर उस गौरव का अनादर कैसे करूँ ? वह जानती है और चाहे सारा संसार उसकी निंदा करे, उसकी माता सराहना ही करेगी। उसकी आत्मा से यह आनंद भी छीन लूँ··पुत्री ने वही किया, जो उसे करना चाहिए था। उसके पिता होते तो आज सुन्नी की प्रतिमा बनाकर पूजते।''[4]

---

1. मानसरोवर, भाग 3, पृष्ठ 131
2. वही, पृष्ठ 131
3. वही, भाग 1, पृष्ठ 86
4. वही, पृष्ठ 90-91

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

'रियासत का दीवान' की सुनीता अपने सत्यनिष्ठ और स्वाभिमानी पुत्र को देशनिकाला देने पर स्वयं भी उसके साथ उस नरपिशाचों की नगरी को त्याग देती है। वह पद तथा धन के लोभी पति द्वारा दी जानेवाली आर्थिक सहायता भी स्वीकार नहीं करती—"मुझे तुम्हारी सहायता की ज़रूरत नहीं।—तुम्हें अपना पद और सम्मान प्यारा है, उसका आनन्द से उपयोग करो। मेरा लड़का और कुछ न कर सकेगा, तो पाव भर आटा तो कमा ही लाएगा।"[1]

परिस्थितियों की उत्कट प्रतिक्रियाएँ कभी-कभी माँ के मन में उदासीनता भर देती हैं, किन्तु यह स्थिति क्षणिक रहती है। जीवन-निर्वाह स्वत: एक समस्या हो जाए तो वात्सल्य कुंठित होता प्रतीत होता है। 'मिस पद्मा' की विलासिनी पद्मा प्रो. प्रसाद के साथ पत्नीवत् रहती और उनकी अवैध संतान की माता बनती है। उसके प्रसव-काल में उसका सर्वस्व अपहरण कर रसिक मि. प्रसाद अपनी एक छात्रा के साथ विदेश-भ्रमण के लिए चले जाते हैं। तब उसे 'बालक पर कभी दया आती, कभी प्यार आता, कभी घृणा आती।'[2] प्रेमी का विश्वासघात उसके वात्सल्य को अवरुद्ध करता है। वस्तुत: इस कहानी में प्रेमचन्द जी ने स्वच्छंद प्रेम और विवाह-पूर्व मर्यादा की सीमा के उल्लंघन के दुष्परिणामों का अंकन किया है।

जब अपनी ही सन्तान द्वारा भी माता को उपेक्षा और तिरस्कार मिलता है तो उसका मातृत्व आहत होने लगता है। 'बेटों वाली विधवा' में फूलमती का सारा स्वामित्व उसके पति की मृत्यु के साथ छिन जाता है। बाग़-बग़ीचा, मकान, नक़द बीस हज़ार और आभूषण सब लेकर भी पुत्रों को सन्तोष नहीं होता। वे अपनी एकमात्र अविवाहित बहन के विवाह का दायित्व वहन करने के लिए भी तैयार नहीं होते जिसका परिणाम होता है अनमेल विवाह। उमानाथ उन्हें उनकी स्वामित्वहीनता का बोध कराते हुए कहता है—"क़ानून यही है कि बाप के मरने के बाद जायदाद बेटों की हो जाती है। माँ का हक़ केवल रोटी-कपड़े का है।"[3] और जब वह इस क़ानून के तहत आश्रित न बनकर स्वावलम्बी बनने की सोचती है तो मान-प्रतिष्ठा का प्रश्न आड़े आता है—"वह लड़कों से अलग होकर रहे भी तो नाक किसकी कटेगी। संसार उसे थूके तो क्या, और लड़कों को थूके तो क्या, बदनामी तो उसी की है, दुनिया यही तो कहेगी कि चार जवान बेटों के होते बुढ़िया अलग पड़ी हुई मजूरी करके पेट पाल रही है। जिन्हें उसने हमेशा नीच समझा, वही उस पर हँसेंगे। नहीं, वह अपमान इस अनादर से कहीं ज़्यादा हृदयविदारक था। अब अपना और घर का पर्दा ढका रहने में

---

1. मानसरोवर, भाग 2, पृष्ठ 150
2. वही, पृष्ठ 86
3. वही, भाग 1, पृष्ठ 66

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ही कुशल है।''[1] वह अपने ही घर में परिश्रम करके तटस्थ भाव से रहने लगी। कुमुद के विवाह के साथ उसकी अंतिम लालसा भी नष्ट हो गई। ''उसका वात्सल्यभग्न मातृत्व अभिशाप बनकर उसे धिक्कारने लगा। जिस जीवन को उसने मातृत्व की विभूति समझा था, जिसके चरणों पर वह सदैव अपनी समस्त अभिलाषाओं और कामनाओं को अर्पित करके अपने को धन्य मानती थी, वही मातृत्व आज उसे अग्निकुंड-सा जान पड़ा, जिसमें उसका जीवन जलकर भस्म हो रहा था।''[2]

'दो भाई' कहानी की कलावती ने जिन दो बेटों—केदार और माधव— को एक साथ खिलाया-पिलाया और ब्याह रचाया, उन्हीं के बड़े होने पर माधव धन-सम्पत्ति और केदार सन्तान की लालसा से खिन्न रहता था। पत्नियाँ भी परस्पर मन न मिलने से समकोण की रेखाओं की भाँति अलग हो गईं और एक घर में दो चूल्हे जलने लगे। कुल की साख और मर्यादा के कारण वे भ्रातृस्नेह न रहने पर भी ईर्ष्या-द्वेष में सुलगते किसी तरह भाई के नाम को निभाते रहे। तीसरी पुत्री के विवाह के समय अर्थाभाव में ग्रस्त माधव का मकान रेहन रखकर ही केदार उसे अस्सी रुपया देने को तैयार होता है। कलावती यह देखकर सूख जाती है। उसके ''नयनों में लज्जा है और हृदय में शोक-संताप। उसने पृथ्वी की ओर देखकर कातर भाव में कहा—हे नारायण! क्या ऐसे पुत्रों को मेरी ही कोख से जन्म लेना था।''

'ममता' कहानी के सेठ रामरक्षा की माँ का भी अपने पुत्र के प्रति असीम मोह है। पिता की मृत्यु के पश्चात् सेठ रामरक्षा दस हज़ार रुपए माता के नाम बैंक में जमा करा उससे पृथक् रहने लगता है। पुत्रवधू के आचरण से खिन्न माँ अयोध्या चली जाती है। पुत्र के दीवालिया होने पर वह अपने ममत्व के कारण पुन: दौड़ी आती है और उसे ऋणमुक्त कर जेल से रिहा कराती है। किन्तु यथोचित सम्मान न पा अयोध्या चली जाती है।

'माँ' कहानी की करुणा राष्ट्रसेवक आदित्य की पत्नी तथा प्रकाश की माता है। वह पति की मृत्यु के पश्चात् दूध बेचकर और सिलाई करके अपने पुत्र को उच्च शिक्षा दिलाती है। वह उसमें पति के आदर्शानुरूप दया, उदारता, त्याग, सत्य, परोपकारिता आदि उदात्त गुणों का उन्नयन करना चाहती है किन्तु एक बार भिक्षुणी को आटे के स्थान पर भूसा देकर भगाते देखकर उसकी अविनय और धृष्टता पर दु:खी होती है। उसका पुत्र देश-सेवा को ऐसी ऊसर खेती समझता है जिसका पुरस्कार होता है अस्थायी यश। अत: वह माता के प्रेरित करने पर भी सिंध के बाढ़-पीड़ितों तथा उड़ीसा के अकाल-पीड़ितों की सहायतार्थ न जाकर काश्मीर-भ्रमण के लिए चला

1. मानसरोवर, भाग 1, पृष्ठ 67
2. वही, पृष्ठ 66

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जाता है। प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने पर उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ और बढ़ जाती हैं और वह विलायत जाकर मजिस्ट्रेट बनने की इच्छा करता है। पहले माता के मना करने पर मान जाता है, किन्तु उदास और अनमना रहने लगता है। माँ प्रयत्न कर उसके लिए स्वीकृति-पत्र लेती है तथा ऋण ले उसे विदेश भेजती है, किन्तु उसका मन विरक्त हो जाता है। वह अपने ममत्व को व्यापक और विशाल बना उसमें मुहल्ले-भर के बच्चों, चिड़ियों और पशुओं को समेट अपना स्नेह मुक्त-हस्त बाँटती है। अन्त में स्वप्न में पुत्र को पिता को हथकड़ी पहनाकर लाते देख वह उत्तेजित हो जाती है और पति की समस्त वस्तुओं के साथ ही पुत्र द्वारा मार्ग से लिखे गए पत्र को अग्नि को समर्पित कर वह पति की तस्वीर को हृदय से लगा कर चिरनिद्रा में सो जाती है।

'शूद्रा' कहानी की विधवा गंगा सामाजिक अन्याय के कारण अपनी सन्तान के सुख से वंचित होती है। उसका और उसकी पुत्री गोरा का भाड़ झोंक कर किन्तु स्वाभिमानपूर्वक जीवनयापन भी समाज को सह्य नहीं होता। लोगों द्वारा बहकाए जाने पर दामाद पुत्री का परित्याग कर कहीं चला जाता है और कुछ समय पश्चात् एक वृद्ध दामाद के पास ले जाने की झूठी कहानी गढ़ पुत्री को ही ग़ायब कर देता है।

प्रेमचन्द ने इस प्रकार की सन्तप्त माताओं को देखकर ही निःसन्तान स्त्रियों की अवमानना नहीं की है। वस्तुतः प्रताड़ित होकर जीने की अपेक्षा वे नारी का मर जाना उचित समझते थे। इसीलिए उन्होंने विधवा स्त्रियों के लिए शिक्षा और स्वावलम्बन को बहुत आवश्यक मान । उनकी नारियाँ भी उनके दृष्टिकोण के अनुरूप ही लांछित और अपमानित होकर नहीं जीतीं। फूलमती आत्मघात कर लेती है तो कलावती और रामरक्षा की माँ अपनी ममता को छोड़कर तटस्थ हो जाती हैं। लेखक ने उनके चरित्रों को उभारने के लिए विशिष्ट घटनाओं का संयोजन किया है और घटना-प्रवाह को मुख्य पात्रा के प्रतिकूल रखा है।

(आ) मातृत्व का अपुनीत पक्ष

ममत्व और वात्सल्य जहाँ नारी की दुर्जेय शक्ति है, वहीं मोहान्धता उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता। इस दुर्बलता से ग्रस्त माता अपने साथ-साथ बालक के जीवन को भी नष्ट कर देती है। बहुधा एकमात्र सन्तान अथवा सबसे बड़ी या अन्तिम सन्तान माता के अतिशय लाड़ के कारण बिगड़ जाती है। पौधे को उगाना, सींचना और गोड़ना ही पर्याप्त नहीं होता। उसे पुष्ट और सुन्दर बनाने के लिए काटना-तराशना भी पड़ता है। जो माताएँ अपने बालक को आवश्यक नियन्त्रण में नहीं रखतीं, वे एक प्रकार से अपने दायित्व से च्युत होती हैं। ऐसी माताओं में उपलब्ध दुर्बलताएँ ये हैं—मोहान्धता, धन लोलुपता, रूढ़िग्रस्त चेतना।

(अ) मोहान्धता— माता की अतिशय मोहान्धता सन्तान के जीवन को नष्ट

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कर देती है। 'गृहदाह' कहानी की देवप्रिया अपने पुत्र ज्ञानप्रकाश के प्रति अत्यधिक मोह रखने के कारण सौतेले पुत्र सत्यप्रकाश को उत्पीड़ित कर घर छोड़ने के लिए विवश कर देती हैं। वह अपने पुत्र का विवाह भी अच्छे घर में करना चाहती है। पुत्र जब भ्रातृप्रेम के कारण विवाह करना स्वीकार नहीं करता तो वह टोना-टोटका, रोना-धोना, आत्मघात आदि अस्त्रों का प्रयोग करने से भी बाज़ नहीं आती। जितनी ही वह सौतेले पुत्र से घृणा करती है, उनके पुत्र का ममत्व बढ़ता जाता है। अन्त में वह उन्मादावस्था में विष खाकर आत्मघात कर लेती है।

'सुजान भगत' में कमाऊ पूत के प्रति मोहान्ध बुलाकी अकारण अपने दानशील और निस्पृह पति की अवज्ञा करती है, किन्तु वृद्धावस्था में उन्हें अतिशय परिश्रम करते देख आत्मग्लानि से भर जाती है।

'शाप' कहानी की रानी माँ अपने पुत्र के शिकार से न लौटने पर उसके शेर द्वारा मारे जाने की संभावना से ही स्वयं भी काले वस्त्र धारण करने लगती है और प्रजा से भी यही अपेक्षा करती है। प्रियम्वदा नामक स्त्री द्वारा कुमार के जीवित होने की सूचना पर वे हर्षोन्मत्त हो उठती हैं तथा उसे अर्जुन नगर उपहारस्वरूप दे देती हैं। ब्राह्मण पत्नी विद्याधरी पर पुत्र को आसक्त देख उसे उसके पति से अलग कर वस्त्राभूषणों का लालच दे पुत्र के अनुकूल बनाना चाहती हैं। इस प्रकार वे पुत्र-मोह में नैतिकता को भी त्याग देती हैं।

'गृहनीति' कहानी में कथानायक की माता में भी सामान्य माताओं जैसी मोहान्धता है, इसीलिए पुत्र के विवाहोपरान्त भी वह उस पर अपना एकाधिपत्य रखना चाहती है। अपने अधिकारों का हनन या स्वामित्व का विभाजन उसे स्वीकार नहीं, अतः पुत्रवधू को पुत्र की दासी के रूप में ही स्वीकारती है तथा पुत्र से उसकी झूठी शिकायत कर उसे उसकी ओर से विमुख करना चाहती है। शिक्षित और विवेकी पुत्र अपनी समझदारी और दूरदर्शिता से माता और पत्नी के मध्य संतुलन और सामंजस्य बनाए रखता है अन्यथा माता द्वारा बोया विषबीज अवश्य उसके जीवन को विषाक्त कर देता। 'पिसन हारी का कुआँ' में हरनाथ अपने दुष्कृत्यों में भी माँ की शह पा इतना बिगड़ जाता है कि हठ, दुराग्रह, बनावटी उदासी और खाना न खाने की धौंस दिखाकर अपनी उचितानुचित माँग पूरी कराता है। उसकी माँ न केवल स्वयं उसकी इच्छा-पूर्ति करती है, बल्कि अपने पति को भी इसके लिए बाध्य करती है। परिणामतः पुत्र एक दिन हवालात में बन्द कर दिया जाता है। 'चोरी' कहानी में भी माँ अपने पुत्र के प्रति अन्धविश्वास रखने के कारण उसके चोरी करने पर भी उसे निर्दोष सिद्ध करने का प्रयास करती है तथा सारा आक्रोश अपने अकर्मण्य पति पर डाल देती है—"तेरा बाप नौकरी करता, बाहर से रुपये कमा लाता, चार जने उसे भला आदमी कहते, तो तू भी सच्चा होता। अब तो तू ही झूठा है। जिसके भाग में मिठाई लिखी थी, उसने मिठाई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

खायी। तेरे भाग में तो लात खाना ही लिखा था''[1] वह उसे खम्भे से बाँध कर मारने के प्रायश्चित्त स्वरूप गुड़ और चबेना खिलाती है, पर यह नहीं जानती कि वह उसे कुमार्ग पर चलने की प्रेरणा दे रही है।

(ख) धन-लोलुपता— माता की भूमिका में रहते हुए भी कुछ नारियों में धन की लिप्सा इतनी प्रबल होती है कि वे उचित-अनुचित ढंग से धन-प्राप्ति को ही सब-कुछ मान लेती हैं तथा उसके लिए अपनी सन्तान के जीवन को भी दाँव पर लगाने में संकुचित नहीं होतीं। 'भूत' कहानी की विंध्येश्वरी की माता अपने दो अबोध पुत्रों के लालन-पालन के लिए धन प्राप्त होने की आशा से अपनी सोलहवर्षीय अबोध कन्या का विवाह पिता-तुल्य विधुर जीजा से करने को तैयार हो जाती हैं। स्वर्गीय बहन द्वारा पुत्री-रूप में पाली गई विंध्येश्वरी जब इस सम्बन्ध के प्रति अनिच्छा व्यक्त करती है तो वे उसे धन-आभूषण का लोभ दिलाती हैं तथा अन्तिम अस्त्र के रूप में बहन की स्मृति में घुलते जीजा की प्राण-रक्षा की दुहाई देने लगती हैं। उनके द्वारा निर्मित शब्दों के चक्रव्यूह में फँस सरल हृदय बालिका अपने जीवन का सत्यानाश कर लेती है।

(ग) रूढ़िग्रस्त चेतना—सामाजिक रूढ़ियों और अन्धविश्वास में ग्रस्त जड़ स्त्रियाँ माता के रूप में भी अपनी सन्तान के अनिष्ट के लिए उत्तरदायी बनती हैं। 'नैराश्य लीला' की जागेश्वरी अपनी एकमात्र बेटी कैलासकुमारी को वैधव्यग्रस्त देखकर दुःखी होती है। पति के कहने पर वह उसका चित्त बहलाने के लिए उसे आमोद-प्रमोद में व्यस्त कर देती है किन्तु शीघ्र ही सामाजिक निन्दा से भयभीत हो पूजा-पाठ, व्रत-तीर्थ आदि की ओर प्रेरित करती है। लोकापवाद से डर वह उसे विधवाओं सदृश वेशभूषा धारण करने के लिए बाध्य करती है तथा पठन-पाठन और समाज-सेवा के कार्यों से विरत करने का प्रयास करती है और इस प्रकार उसके दुःख को कम करने के विपरीत द्विगुणित कर देती है।

'कायर' कहानी में प्रेमा की माँ मुख्य पात्रा न होने पर भी एक संकुचित दृष्टिकोण वाली महिला के रूप में चित्रित हैं। वह अपनी पुत्री का विवाह विजातीय करने की अपेक्षा उसका मर जाना अच्छा समझती है—''मैं इस विवाह के नज़दीक न जाऊँगी, न कभी इस छोकरी का मुँह देखूँगी। समझ लूँगी, जैसे और सब लड़के मर गए, वैसे यह भी मर गई।''[2] 'झाँकी' कहानी की अम्मा भी लेन-देन की रूढ़िवादी परम्पराओं में फँस अपने पुत्र के जीवन को नरकतुल्य बना देती है। 'तेंतर' कहानी की दामोदर दत्त की माता जी अंधविश्वासी और रूढ़िवादी होने के कारण तीन पौत्रों के पश्चात् जन्मी पौत्री को अनिष्टकारी मान उसके मर जाने की कामना करती हैं तथा अपनी

---

1. मानसरोवर, भाग 5, पृष्ठ 103
2. मानसरोवर, भाग 1, पृष्ठ 193

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मान्यता से दूसरों को सहमत कराने के लिए पुत्र, पुत्रवधू और स्वयं की अनिष्ट-कामना भी करती हैं। उनका अंधविश्वास इतना प्रबल है कि धीरे-धीरे उनकी पुत्रवधू और पुत्र भी उसकी जकड़ में आ अपनी पुत्री की उपेक्षा करते हैं।

'स्वर्ग की देवी' की सीता सरन की माता प्रसवकाल में अपनी बहू को दमघोंटू कमरे में रखती है। वह अपने पोते-पोतियों को भी हठी और दुराग्रही बना देती है। 'धिक्कार' कहानी में गोकुल की माँ रूढ़िवादी होने के कारण विधवा को अमंगलकारी मानती है तथा विधवा-विवाह को पाप समझती है। विवाह के समय गोकुल की युवा विधवा चचेरी बहन को सामने आने पर वह उसे इतना तिरस्कृत करती है कि वह आत्मघात के लिए उद्यत हो जाती है। मानी के पुनर्विवाह से भी वह क्रोधित होती है।

लेखक ने प्राय: ऐसी स्त्रियों के मातृत्व रूप को पुनर्प्रतिष्ठित किया है। उदाहरणार्थ 'धिक्कार' में गोकुल की माँ गोकुल के गृहत्याग से सुधर जाती है। जहाँ ऐसा नहीं होता, वहाँ उन्हें सन्तान के जीवन को नष्ट करने के लिए उत्तरदायी दिखाकर उन्होंने दूसरी माताओं को ऐसे पारिवारिक पतन से बचने की प्रेरणा और दिशा दी है।

4. विमाता

माता का ही एक अन्य रूप वह है जिसमें वह पति कहलाने वाले संतानवान् विधुर की कामतृप्ति, सन्तान-प्राप्ति या सम्पत्ति-संरक्षण के लिए उसकी दूसरी पत्नी बनकर आती है। अपने से बड़ी आयु वाले जीवन-सहचर से सामंजस्य स्थापित करने के साथ-साथ उसे बिना माँ बने ही माता के उत्तरदायित्व को भी निभाना पड़ता है। समाज की सशंकित दृष्टि और स्वयं बच्चे की उदासीनता, उपेक्षा और विरक्ति भी उसके कर्त्तव्य-निर्वाह में बाधक बनती हैं। उसके लिए अपना कर्त्तव्य-मार्ग चुनना दुष्कर हो जाता है।

मानव न आदर्शों की प्रतिमा है, न कुत्सित यथार्थ का घिनौना पुतला। वह सु और कु के समवाय से निर्मित जीव है। अत: किसी में सात्त्विकता का तो अन्य में तामसिकता का अनुपात अधिक मिलता है। इसीलिए विमाताओं के भी आदर्श और अनादर्श दोनों रूप संभव हैं। प्रेमचन्द ने उक्त दोनों ही रूपों में उनका अंकन किया है।

मातृहीन बालक को प्रेमचन्द सृष्टि का सर्वाधिक दयनीय प्राणी मानते थे। ममतामयी माता के संरक्षण का अभाव उसके शारीरिक-मानसिक विकास को कुंठित कर देता है। उसका बाल-हृदय खिलौनों और मिठाई से तृप्त नहीं हो पाता। प्राय: पत्नी की मृत्यु के पश्चात् पिता भी सन्तान के प्रति विरक्त हो जाता है जिससे उसकी पीड़ा और बढ़ जाती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रेमचन्द जी स्वयं इस पीड़ा के भुक्त-भोगी थे।[1] 'घर जमाई' कहानी में उनकी टिप्पणी द्रष्टव्य है—''बच्चों के लिए बाप एक फालतू-सी चीज़—एक विलास की वस्तु है ; जैसे घोड़े के लिए चने या बाबुओं के लिए मोहनभोग। मोहनभोग उम्र-भर न मिले, तो किसका नुकसान है; मगर एक दिन रोटी-दाल के दर्शन न हों, तो फिर देखिए क्या हाल होता है।''[2] माँ जैसी स्नेह मिश्रित भावना किसी अन्य में न होने से शिशु रूपी पौधा बजाय बढ़ने और फूलने-फलने के सूखने लगता है। उसे दूसरों के दयाभाव अथवा उपेक्षा का पात्र बनकर ही जीना पड़ता है, जिससे वह कुंठित मानसिकता से ग्रस्त हो जाता है।[3]

प्रेमचन्द की कहानियों में विमाताओं को उनके व्यवहार के आधार पर दो वर्गों में रखकर देखा जा सकता है—(अ) मातृत्व से युक्त, (आ) कुटिल एवं निष्ठुर।

(अ) मातृत्व से युक्त—अपनी संतान के प्रति नारी का ममत्व स्वाभाविक होता है, किन्तु किसी अन्य की संतान के प्रति वैसा ही ममत्व होना निःसन्देह प्रशंसनीय है। 'घर जमाई' कहानी में हरिधन की विमाता उससे अत्यधिक प्रेम करती है। स्वयं युवा हरिधन ही घर में उसके आगमन को सहज रूप में नहीं ले पाता और पत्नी को लेकर ससुराल में घर जमाई बनकर रहने लगता है। कालान्तर में वहाँ तिरस्कृत और उपेक्षित हो जब लौटता है तो भी उसकी विमाता प्रसन्न हो जाती है—''बेटा, तुम घर आ गए, हमारे धन भाग। अब इन बच्चों को पालो। माँ का नाता न सही, बाप का नाता तो है ही। मुझे एक रोटी दे देना, खाकर एक कोने पड़ी रहूँगी। तुम्हारी अम्मा से मेरा बहन का नाता है। उस नाते तुम मेरे लड़के होते हो।''[4] लेखक ने स्पष्ट किया है कि संतान द्वारा भी विमाता को अपेक्षित सम्मान नहीं मिलता, क्योंकि उसके मन में कहीं अपनी दिवंगत माता का स्थान छिन जाने का भाव रहता है। विमाता के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रस्त रहने के कारण उसे सहज रूप में स्वीकार करना सम्भव नहीं हो पाता। हरिधन भी स्वयं ही घर छोड़कर जाता है। लेखक ने उसे अन्त में माता के प्रति सदाशय दिखाकर उसका हृदय-परिवर्तन कर दिया है।

'विमाता' कहानी में नवविवाहिता अम्बा का हृदय मातृत्व की व्यापक भावना से युक्त है। वह पति की आज्ञानुसार सौतेले पुत्र मुन्नू को अपना असीम प्यार दे उसके मन

---

1. देखिए : 'प्रेमचन्द घर में'—शिवरानी देवी, पृष्ठ 3
2. मानसरोवर, भाग 1, पृष्ठ 117
3. ''मातृहीन बालक संसार का सबसे करुणाजनक प्राणी है। दीन-से-दीन प्राणियों को भी ईश्वर का आधार होता है, जो उनके हृदय को सँभालता रहता है। मातृहीन बालक इस आधार से वंचित होता है। माता ही उसके जीवन का एकमात्र आधार होती है। माता बिना वह पंखहीन पक्षी है।''
—मानसरोवर, भाग 6, 'गृहदाह' कहानी, पृष्ठ 146
4. मानसरोवर, भाग 1, पृष्ठ 125

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

से माता के अभाव की पीड़ा को दूर करना चाहती है। उसका अत्यधिक ममत्व मुन्नू के बाल मन को अनिष्ट की आशंका से भर देता है। वह उसके भी न रहने पर अपनी दशा की परिकल्पना से ही दु:खी रहने लगता है और उसकी चर्चा चलते ही फूट-फूटकर रोने लगता है। जैसा कि सामान्यत: होता है, उसका रुदन दूसरों को माता के प्रति संशकित कर देता है। अम्बा खिन्न हो उठती है—''...यह असंभव है कि मैं मुन्नू के हृदय से माँ का शोक मिटा दूँ। मैं चाहे अपना सर्वस्व अर्पण कर दूँ, परन्तु मेरे नाम पर जो सौतेलेपन की कालिमा लगी हुई है, वह मिट नहीं सकती।''[1] उसकी खिन्नता तभी दूर हो पाती है, जब उसे मुन्नू की वास्तविक मानसिकता का ज्ञान होता है।

'अलग्योझा' कहानी की पन्ना सौत के पुत्र रघ्घू के प्रति प्रारम्भ में निष्ठुर रहती है किन्तु पति की मृत्यु के पश्चात् भी उसे अपनी सन्तानों के प्रति दायित्व-निर्वाह और प्रेम करते देखकर अपना व्यवहार बदल लेती है। वह उसके सुख-दु:ख का ही ख्याल नहीं रखती, बल्कि उसका विवाह करती है और पुत्र-वधू मुलिया के पूर्वाग्रह का शिकार हो विभिन्न कष्ट उठाती है। न चाहते हुए भी रघ्घू के जीवन को सुखमय बनाने की शुभेच्छा से अलग्योझे की सहमति देती है। रघ्घू की मृत्यु के पश्चात् भी वह अपने पुत्र केदार का विवाह मुलिया से कर देती है तथा उसके बच्चों को ममत्व एवं संरक्षण दे रघ्घू के संयुक्त परिवार के स्वप्न को साकार करती है। हृदय-परिवर्तन द्वारा चरित्र के क्रिया-कलाप को अभीप्सित दिशा में मोड़ कर आदर्श-प्रतिष्ठा करना प्रेमचन्द की प्रिय शैली थी। उसके कारण कभी-कभी उनके पात्र सामान्य न रहकर दैवी से प्रतीत होने लगते हैं किन्तु प्रेमचन्द अपने आदर्श की प्रतिष्ठा करने के लिए इस न्यूनता को जानबूझ कर उपेक्षित करते चलते हैं।

(आ) कुटिल एवं निष्ठुर—एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है। प्रेमचन्द की 'गृहदाह' की देवप्रिया एक ऐसी ही विमाता है जिसके कारण सारी विमाताएँ समाज की संदिग्ध दृष्टि और निन्दा का शिकार बनती हैं। वह एक कुटिल और निष्ठुर स्त्री है। सौतेले पुत्र सत्यप्रकाश को उत्पीड़ित करके वह उसे घर छोड़ने को विवश कर देती है। स्वस्थ, सुन्दर, विनयी और कुशाग्रबुद्धि सत्यप्रकाश उसके अत्याचारों की चक्की में पिस गन्दा, मैला-कुचैला रहनेवाला, पढ़ने से जी चुरानेवाला, दुर्बल, आवारा लड़का बन गया। उसकी शिकायतें सुनते-सुनते देवप्रकाश भी तंग आकर उसे मारने-पीटने लगे।[2] अपने पुत्र ज्ञानप्रकाश का मातृ प्रेम भी उसे नहीं सुहाता। उसके विवाह के लिए असहमत होने का दोष भी वह सत्यप्रकाश पर डालती है तथा उसे अपशब्द-भरे पत्र लिखती है।[3] लेखक ने उसमें परिवर्तन असंभव देख उसे आत्मघात

---

1. मानसरोवर, भाग 8, पृष्ठ 122
2. देखिए : मानसरोवर, भाग 6, 'गृहदाह' कहानी, पृष्ठ 148
3. वही, पृष्ठ 157

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

करते चित्रित किया है।

निष्कर्ष

प्रेमचन्द ने विवाहिता नारी के भी आदर्श और विकृत दोनों रूपों की परिकल्पना की है। उसके अनुसार निर्धनता, अभाव, कष्ट में पति के प्रति सत्यनिष्ठता, सेवा, भक्ति, त्याग, धैर्य आदि को बनाए रखनेवाली नारियाँ आदर्श और सफल दाम्पत्य जीवन जीती हैं। वे अपने पंतियों की रक्षक रहकर उनको सन्मार्ग पर लानेवाली होती हैं। इसके विपरीत विषम दाम्पत्य जीवन जीनेवाली नारियों में कुछ तो पुरुष की स्वेच्छाचारिता, पाशविकता, लोलुपता आदि के कारण और कुछ अपनी अशिक्षा, व्यक्तित्वहीनता, आत्माभिमान के अभाव अथवा कुंठा, रूढ़िग्रस्तता या लिप्सा के कारण दुःखी रहती हैं या आत्मघात करने के लिए विवश होती हैं। लेखक की दृष्टि में आदर्श व प्रथम कोटि की पत्नियाँ ही अधिक सुखी रहती हैं।

नारी का माताओं की भूमिका में चित्रण करते समय उन्होंने मातृत्व के आदर्शों में वात्सल्य, त्याग, सहिष्णुता, सत्प्रेरणा आदि गुणों की स्थापना की है। इसके विपरीत मातृत्व के अस्वस्थ रूप में उन्होंने मोहान्धता, अर्थलोलुपता, रूढ़िग्रस्तता आदि अवगुणों की अवस्थितियाँ दिखायी हैं। विमाताओं में उन्होंने मातृत्व भाव से रहित कुटिल विमाताओं का भी अंकन किया है। उन्होंने अपने नारी पात्रों के चरित्रोद्घाटन के लिए पूर्व-निश्चित अभिकल्प के अनुरूप शैलियों का प्रयोग किया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पंचम अध्याय

प्रेमचन्द की नारी-केन्द्रित कहानियों में नारी के अन्य रूप

प्रेमचन्द की सहानुभूति समग्र शोषित समाज के साथ थी। उनमें भी परिवार, समाज द्वारा उपेक्षित नारी के प्रति उनकी करुणा सर्वाधिक रही। उन्होंने नारी के प्रेयसी, पत्नी, माता आदि रूपों का चित्रण करते हुए उनकी विभिन्न समस्याओं का विवेचन किया। उनकी कहानियों में उपलब्ध नारी के दो अन्य रूप भी मिलते हैं— (1) शोषित रूप, (2) प्रगतिशील कर्मस्विनी रूप।

1. शोषित रूप

यद्यपि नारी सृष्टि की नियामिका और पुरुष की पूरक शक्ति है, तथापि शैशव से लेकर मृत्यु तक वह किसी-न-किसी रूप में परिवार और समाज के शोषण का शिकार रहती है। कन्या तथा भगिनी रूप में उसे माता-पिता तथा भाइयों के अनुशासन में प्रतिबन्धित जीवन जीना पड़ता है। युवावस्था में उसकी मर्यादा पति कहलानेवाले पुरुष के साथ ऐसी बाँध दी जाती है कि उसकी अपनी अस्मिता ही नहीं रह जाती। उसका समस्त सुख, सौभाग्य उस तक ही सीमित हो जाता है।[1] वृद्धावस्था में पुत्र-कलत्रों का अवलम्ब ही उसका एकमात्र विकल्प रह जाता है। प्रेमचन्द की कहानियों में शोषित नारियों के चित्र दो प्रकार के हैं—विधवा, वेश्या।

(अ) विधवा रूप

पति की संरक्षता में रहनेवाली नारी सधवा और उसकी मृत्यु के पश्चात् विधवा की संज्ञा पाती है। वैदिक काल में नियोग पद्धति तथा संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली के कारण विधवाओं की दशा अधिक शोचनीय नहीं थी। अधिकांश विधवाएँ मृत पति के शव के साथ ही सती हो जाती थीं। सन्तान, सम्पत्ति अथवा किसी अन्य कारण से सती न हो

1. ''सौभाग्यवती स्त्री के लिए उसका पति संसार की सबसे प्यारी वस्तु होती है। वह उसी के लिए जीती और उसी के लिए मरती है। उसका हँसना-बोलना उसी को प्रसन्न करने के लिए और उसका बनाव-शृंगार उसी को लुभाने के लिए होता है।''—प्रेमचंद, वरदान, पृ. 115

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सकने वाली स्त्रियाँ कठोर ब्रह्मचर्य का निर्वाह करते हुए जीती थीं। मध्ययुग में विधवाओं को पति-घातिनी, पापिनी, कुलटा के सम्बोधन ही नहीं दिए जाते थे, बल्कि उन्हें विरूप बनाकर, समस्त मंगल कार्यों से उदासीन रहते हुए तीर्थ, व्रत, उपवास आदि के कष्टसाध्य प्रतिबन्धों को भोगते हुए जीना पड़ता था। उनके भरण-पोषण के दायित्व से मुक्त होने की अभिलाषा, रूढ़िग्रस्तता और उनके अमंगलकारी होने के अंधविश्वास के कारण उन्हें समाज और परिवार द्वारा सती होने के लिए प्रोत्साहित और प्रेरित किया जाता था तथा रंचमात्र स्वीकृति मिलते ही पुनर्विचार का समय न देकर अत्यंत नृशंसतापूर्वक चिता में जला दिया जाता था। विधवा-पुनर्विवाह की परिकल्पना भी असह्य मानी जाती थी। यद्यपि प्रेमचन्द-युग तक आते-आते सती प्रथा का उन्मूलन ही नहीं हो चुका था, अपितु उनको संरक्षण देने के लिए बंगाल (ईश्वरचन्द्र विद्यासागर), मद्रास (महादेव गोविन्द रानाडे), पंजाब (प्रो. कर्वे) में विधवाश्रमों की स्थापना भी हो चुकी थी। 1856 में हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम के पारित होने से विधवा-विवाह को वैधता मिली किन्तु सामाजिक मान्यता नहीं मिली।

प्रेमचन्द ने विधवाओं की इस शोचनीय दशा को एक समस्या के रूप में मनोवैज्ञानिक धरातल पर विवेचित किया। वे नवीन युग के साथ नवीन धर्म और नवीन जीवन-मानों के निर्धारण के पक्षधर थे। उनके अनुसार यदि विधुर पुरुष पुनर्विवाह कर सन्तानोत्पत्ति कर सकता है तो स्त्री को अनावश्यक प्रतिबन्धों में जकड़ना अनुचित है। 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में उन्होंने स्पष्ट कहा है—''अगर आज किसी दैवी बाधा से यह मकान गिर पड़े तो हम कल ही उसे बनाना शुरू कर देंगे, मगर जब किसी अबला के जीवन पर दैवी आघात हो जाता है तो उससे आशा की जाती है कि वह सदैव उसके नाम को रोती रहे। यह कितना बड़ा अन्याय है। पुरुषों ने यह विधान केवल अपनी काम-वासना को तृप्त करने के लिए किया है...जिसने यह व्यवस्था की, वह चाहे देवता हो या ऋषि अथवा महात्मा, मैं उसे मानव-समाज का सबसे बड़ा शत्रु समझता हूँ। स्त्रियों के लिए पतिव्रता-धर्म का पंख लगा दिया। पुनः संस्कार होता, तो इतनी अनाथ स्त्रियाँ उसके पंजे में कैसे फँसतीं?...न्याय तो हम तब समझते, जब पुरुषों को भी यही निषेध होता।''[1] उन्होंने इस समस्या को नारी-पुरुष की समानता के प्रश्न से जोड़ दिया। उन्होंने पुरुष और पुरुष निर्मित समाज के अतिरिक्त स्वयं नारी की अशिक्षा, परावलम्बन और दमित वासना को इसके कारक माना। पुरुष और पुरुष निर्मित समाज की कठोर विगर्हणा करते हुए उन्होंने 'नैराश्य-लीला' की कैलाशी के पुनर्विवाह का समर्थन किया है। नारी की अशिक्षा, परावलम्बन और प्रगतिशीलता का अभाव भी उसकी पीड़ा को बढ़ाता है। प्रेमचन्द ने उनमें आत्मसम्मान के भाव का होना अनिवार्य माना।

---

1. प्रतिज्ञा, पृष्ठ 108

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

1937 में 'हिन्दू स्त्री साम्पत्तिक अधिकार' बिल के पारित होने पर उन्होंने 'जागरण' के सम्पादक को बधाई देते हुए लिखा—"मैं आपको दिल से बधाई देता हूँ। स्त्रियाँ हमेशा आपकी कृतज्ञ रहेंगी क्योंकि स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर जिस सम्पत्ति को जोड़ते हैं, पति के मर जाने के बाद उन्हीं की गोद के बच्चे उनसे मुँह छिपाते हैं। यह प्रस्ताव जिस दिन पास होगा, करोड़ों महिलाएँ आपको हृदय से आशीर्वाद देंगी और आपकी सदैव कृतज्ञ रहेंगी।"[1] उन्होंने 'बेटों वाली विधवा' कहानी में साम्पत्तिक अधिकार से वंचित विधवा फूलमती की दयनीय अवस्था का मार्मिक चित्रण किया है। पति की मृत्यु के साथ ही उसका सारा स्वामित्व भी समाप्त हो जाता है। उसके आज्ञाकारी पुत्र और पुत्रवधुएँ भी उसकी उपेक्षा करने लगते हैं। पिता द्वारा छोड़े गए मकान, बगीचे, बीस हज़ार नगद के अलावा वे माता के आभूषण भी छल-बल से हथिया लेते हैं। कुँवारी बहन का विवाह बिना दहेज के एक वृद्ध से कर देते हैं, क्योंकि कानून के अनुसार—"बाप के मरने के बाद जायदाद बेटों की हो जाती है। माँ का हक़ केवल रोटी-कपड़े का है।"[2]

अपने ही लगाए वृक्ष की छाया, खोदे कूप के जल से वंचित किए जाने पर फूलमती का जीवन अत्यंत दयनीय हो जाता है और वह गंगा में जलसमाधि ले लेती है। प्रेमचन्द उन पुरुषों के प्रशंसक थे जो मृत्यु से पूर्व अपनी पत्नी के नाम वसीयत कर जाते थे। वे स्वयं भी शिवरानी देवी के नाम वसीयत करना चाहते थे जिसे शिवरानी देवी ने ही नहीं करने दिया।[3] 'बूढ़ी काकी' में काकी अपने पति और पुत्रों की मृत्यु के पश्चात् अपने भतीजे को सारी सम्पत्ति दे, उस पर आश्रित हो जाती है। वहाँ उन्हें अत्यंत उपेक्षा का जीवन जीना पड़ता है। 'पंचपरमेश्वर' में खाला की नियति भी बूढ़ी काकी जैसी ही है किन्तु लेखक को इनकी दशा सह्य नहीं, अत: काकी के भतीजे की बहू को प्रायश्चित्त करा तथा जुम्मन को सरपंचों द्वारा दंडित करा उनकी दशा सुधार दी है।

प्रेमचन्द के समय तक बाल और अनमेल विवाहों का प्रचलन होने से समाज में बाल और युवती विधवाओं की संख्या अपेक्षाकृत अधिक होती थी। पुरुष की स्वाभाविक संसर्गेच्छा का बलपूर्वक दमन कर ये यथासंभव वैधव्य का निर्वाह करती थीं किन्तु संयम के टूटते ही पुरुषों के बहकावों, प्रलोभनों का शिकार बनती थीं अथवा कुट्टनियों, दलालों के चक्कर में पड़कर वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए बाध्य होती थीं। प्रेमचन्द ने उन बाल-विधवाओं को विधवा कहना और मानना ही अनुचित माना जिन्हें पति-दर्शन ही सुलभ नहीं हुआ अथवा जिन्हें विवाह और वैधव्य दोनों की गंभीरता का ज्ञान ही न

---

1. प्रेमचन्द घर में, शिवरानी देवी, पृष्ठ 162
2. मानसरोवर, भाग 1, पृष्ठ 66
3. देखिए : प्रेमचन्द घर में, शिवरानी देवी, पृष्ठ 255

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हो। 'धिक्कार' कहानी में सोलहवर्षीया बाल-विधवा मानी को तिरस्कार और अपमान के कारण आत्मघात से बचानेवाला इन्द्रनाथ उसके साथ विवाह का प्रस्ताव करते हुए अपने मित्र गोकुल से कहता है—"मैं विधवाओं के पुनर्विवाह के पक्ष में नहीं हूँ। मेरा ख्याल है कि पतिव्रता का यह अलौकिक आदर्श संसार का अमूल्य रत्न है और हमें बहुत सोच-समझकर उस पर आघात करना चाहिए, लेकिन मानी के विषय में यह बात नहीं उठती। प्रेम और भक्ति नाम से नहीं, व्यक्ति से होती है। जिस पुरुष की उसने सूरत भी नहीं देखी, उससे उसे प्रेम नहीं हो सकता। केवल रस्म की बात है। इस आडम्बर की, इस दिखावे की हमें परवाह न करनी चाहिए।"[1] उनके समय में विधवा-पुनर्विवाह करने और करानेवाले दोनों निन्दा और उपहास के पात्र होते थे। इन्द्रनाथ को भी गोकुल के माता-पिता का घोर विरोध सहना पड़ा। 'नागपूजा' कहानी में बाल-विधवा तिलोत्तमा के पिता को भी उसके पुनर्विवाह करने पर लोकापवाद सहना पड़ा किन्तु प्रेमचन्द ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यदि अभिभावक और युवक दृढ़ हों तथा कन्या को उसके पारम्परिक रूढ़िग्रस्त संस्कारों से मुक्त करा विवाह के लिए सहमत कर सकें तो अनेक बाल विधवाएँ पुनः सुखद दाम्पत्य पा प्रसन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें।

युवती विधवाओं में भी कुछ अशिक्षित और निराश्रित होती हैं तो कुछ सन्तानवती। अशिक्षित और निराश्रित विधवाओं को परान्न पर ही अवलम्बित रहना पड़ता है। उनका सारा जीवन अपमान, तिरस्कार और उपेक्षा सहते व्यतीत होता है। 'धिक्कार' की मानी चाचा-चाची के घर सेविका से भी बदतर जीवन जीती है। ऐसी विधवाओं के लिए युग के प्रचलन के अनुरूप तथा गांधीवाद के प्रभाव स्वरूप प्रेमचन्द ने प्रारम्भ में ऐसे आश्रमों की स्थापना का सुझाव दिया जिसमें उन्हें शिक्षित कर जीविकोपार्जन करने योग्य बनाया जाए।[2] किन्तु विधवाश्रमों को भ्रष्टाचार के अड्डों और वेश्यालयों में परिणत होते देख वे समझ गए कि केवल संरक्षण संस्थाओं की स्थापना इस समस्या का व्यापक निदान नहीं होगी, उसके लिए हमें समाज और पुरुष वर्ग की मनोवृत्ति को ही आमूल-चूल बदलना होगा। अतः उन्होंने ऐसी युवतियों के पुनर्विवाह का ही अनुमोदन किया।

सन्तानवती विधवाओं की स्थिति अपेक्षाकृत अधिक विषम होती है। निर्धन होने पर अकेले सन्तान का पालन-पोषण और उन्हें योग्य बनाने का दायित्व उनको और व्यथित कर देता है। कन्या की माता होने पर उसकी सुरक्षा और विवाह की चिन्ता उसे घुला डालती है। ऐसी विधवाओं में कुछ तो सन्तान के पालन-पोषण में ही जीवन

---

1. मानसरोवर, भाग 1, पृष्ठ 177
2. देखिए : महिलाओं से, मोहनदास कर्मचन्द गांधी, पृष्ठ 49

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

व्यतीत कर देती हैं, चाहे बाद में उन्हें सुख मिले या दु:ख किन्तु कुछ व्यक्त न करते हुए भी पुन: दाम्पत्य सुख की प्राप्ति के लिए लालायित रहती हैं। प्रेमचन्द ने स्वेच्छा से यावज्जीवन वैधव्य अंगीकार कर पवित्रता से जीने वाली विधवाओं को श्रद्धेय माना। किन्तु जो विधवाएँ संयम द्वारा वैधव्य-निर्वाह में असमर्थ हों, उनके लिए योग्य और स्वेच्छा से अपनाने वाला वर मिले तो पुनर्विवाह ही उचित माना (बालक, अलग्योझ़ा)। वृद्ध विधवाओं की दुर्दशा भी उनसे छिपी नहीं थी। उनकी स्थिति में सुधार लाने का एकमात्र विकल्प उन्होंने सन्तान में श्रद्धा और कर्त्तव्य-भाव का उन्नयन ही माना।

प्रेमचन्द के युग में उच्च, मध्य और निम्न वित्तीय विधवाओं की स्थिति में भी प्रभूत अन्तर था। राजवंशी तथा उच्चकुलीन विधवाएँ या तो सती हो जाती थीं और यदि वे यावज्जीवन वैधव्य निर्वाह करना भी चाहें तो उनको किसी प्रकार का अर्थाभाव नहीं सहन करना पड़ता था। वे साहित्य के अध्ययन, देशसेवा या धार्मिक कृत्यों में लग्न हो जीवन व्यतीत कर सकती थीं। प्रेमचन्द ने ऐसी विधवा के रूप में केवल 'जुगनू की चमक' की चरित-नायिका चन्द्रकुँवरि को ही प्रस्तुत किया है। निम्न वर्ग में नैतिकता के बंधन लचीले होने, स्त्रियों के स्वावलम्बी और कर्मठ होने के कारण विधवाओं के लिए पुनर्विवाह कोई समस्या नहीं होती। वहाँ देवर-भाभी में सहजता से सम्बन्ध हो जाते हैं (अलग्योझा) और यदि स्वेच्छापूर्वक कोई स्त्री वैधव्य स्वीकारती भी है तो उसमें पछतावे की भावना नहीं होती।

प्रेमचन्द ने ऐसी विधवाओं को भी अन्तत: पुनर्विवाह कर घर बसाने (अलग्योझा, बालक) या फिर जीवन से समझौता करके जीते दिखाया है। इनके विपरीत मध्यवित्तीय वर्ग की विधवा की दशा सबसे अधिक शोचनीय होती है। कुछ विधवाएँ मिथ्या प्रदर्शन, सती कहलाने के लोभ के कारण वैधव्य को स्वीकार कर लेती हैं यथा 'ज्योति' कहानी की बूटी, किन्तु कुछ उसे आंशिक रूप में ही स्वीकार कर पाती हैं, यथा 'सुभागी', 'स्वामिनी', 'नागपूजा' की चरित नायिकाएँ। कुछ नारियाँ कष्टसाध्य जीवन के प्रति तीव्र आक्रोश से भी पूरित हैं, यथा 'नरक का मार्ग' की चरित नायिका। प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में इस वर्ग की विधवाओं का अंकन सबसे अधिक किया है। उनकी कहानियों में 'तथ्य' की पूर्णिमा, 'डाकुल का कैदी' की गोपीचन्द की विधवा, 'प्रायश्चित्त' की रामेश्वरी, 'पिसनहारी का कुआँ' की गोमती, 'अलग्योझा' की पन्ना-मुलिया, 'जेल' की क्षमा देवी, 'ग़रीब की हाय' की मूँगा, 'मन्दिर' की सुखिया भी वैधव्य पीड़ित नारियाँ हैं किन्तु वे कहानियों के केन्द्र में नहीं हैं। उनके द्वारा चित्रित विधवाओं की चारित्रिक विशिष्टताओं को उद्घाटित और विश्लेषित करने के लिए उन्हें निम्नलिखित उपशीर्षकों के अन्तर्गत रखकर विवेचित करना समीचीन होगा—वैधव्य को पूर्ण स्वीकृति देने वाली, वैधव्य को आंशिक स्वीकृति देने वाली,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वैधव्य को पूर्ण अस्वीकृति देने वाली।

(क) वैधव्य को पूर्ण स्वीकृति देनेवाली— हिन्दू समाज की मान्यता है कि यदि विधवा निर्धारित खान-पान, रहन-सहन, त्याग-तपस्या सम्बन्धी निर्धारित आचरण-संहिताओं का पालन करती है तो वह अगले जन्म में वैधव्य का दु:ख नहीं देखती। वह इच्छानुसार मोक्ष की अधिकारिणी होती है। प्रेमचन्द ने अपने चतुर्दिक परिवेश एवं समाज में तथाकथित शास्त्रोचित और समाजानुमोदित धर्म का पालन करते हुए वैधव्य निर्वाह करती विधवाओं को देखा था। अत: उनके इस प्रकार के चित्र अत्यंत सजीव हैं। 'शूद्रा' कहानी की विधवा ब्राह्मणी पति की मृत्यु के पश्चात् भी उसके प्रति तटस्थ नहीं हो पाती और मृत पति को सर्वत्र विद्यमान महसूस कर तंत्र-मंत्र, पूजा-पाठ द्वारा उनसे संवाद के लिए व्याकुल हो उठती है। उसकी इस उन्मादावस्था का अनुचित लाभ उठा एक साधु वेशधारी वृद्ध ब्राह्मण उसे मूर्च्छित कर कलकत्ता ले जाता है तथा वहाँ से मिर्च देश भेज देता है। ब्राह्मणी अपने सतीत्व-रक्षा के प्रति संकल्पनिष्ठ है—"मजूरी ही करनी पड़े तो कोई बात नहीं, लेकिन अगर किसी ने कुदृष्टि से देखा तो मैंने निश्चय कर लिया है कि या तो उसी के प्राण ले लूँगी या अपने प्राण दे दूँगी।"[1] मार्ग में मिलने वाली अन्य नारी गौरा तथा उसके पति का संरक्षण और सहयोग पाकर वह अपने सतीत्व की रक्षा में सफल होती है।

'धिक्कार' कहानी की मानी युवती और नि:संतान विधवा है। वह मिथ्या लांछन और लोकापवाद सहने की अपेक्षा वैधव्य निर्वाह को कल्याणकर समझती है। उसकी दृष्टि में—"वह गाली, झिड़की, मार-पीट तक सह लेगी, कोई उस पर सन्देह तो न करेगा। उस पर मिथ्या लांछन तो न लगेगा। शोहदों और लुच्चों से उसकी रक्षा होगी।"[2] निरन्तर अपमान, लांछना और तिरस्कार से तंग आकर जब वह आत्मघात करने के लिए तैयार हो जाती है तो चचेरे भाई गोकुल का मित्र इन्द्रनाथ उसे बचा लेता है। वह उससे विवाह भी करना चाहता है। पहले तो मानी का संस्कारित मन तैयार ही नहीं होता और जब होता भी है तो चाचा की ताड़ना—"तेरे जैसी पापिष्ठाओं का मरना ही अच्छा है; पृथ्वी का बोझ कम हो जाएगा।"[3] इसे आत्मग्लानि और अपराध-बोध से ग्रस्त कर देती है और स्वयं को दुर्भाग्यशालिनी और कलंकिनी मान चलती गाड़ी से कूद आत्महत्या कर लेती है।

'पिसनहारी का कुआँ' की चरितनायिका विधवा गोमती पति का नाम और कीर्ति अक्षुण्ण रखने के लिए दिन-रात पिसाई-कुटाई कर एक कुआँ बनाने के लिए धन

1. मानसरोवर, भाग 2, पृष्ठ 286
2. वही, भाग 1, पृष्ठ 173
3. वही, पृष्ठ 182

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

एकत्र करती है तथा चौधरी को देती है। चौधरी का लोभी पुत्र उस धन को व्यवसाय में लगा नष्ट कर देता है, जिससे गोमती की इच्छा उसके जीवन-काल में पूर्ण नहीं हो पाती। अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए भटकती गोमती की आत्मा चौधरी की पौत्री के रूप में जन्म लेती है। लेखक ने पुनर्जन्म की मान्यता का प्रयोग कर गोमती की अनन्य पति-निष्ठा को प्रकाशित किया है।

'तथ्य' कहानी में पति को देवतुल्य माननेवाली पूर्णिमा उनकी मृत्यु होते ही भौतिकता से पूर्ण विमुख हो आदर्श वैधव्य का निर्वाह करती है। वह "सिर्फ एक समय सूखी रोटियाँ खाती है।···नमक छोड़ दिया है, घी-दूध सब त्याग दिया है···आए दिन व्रत रखती है। कभी एकादशी, कभी इतवार और कभी मंगला। एक चटाई बिछाकर जमीन पर सोती है।"[1] सुहाग के उजड़ते ही उसके लिए संसार मिथ्या और निरर्थक हो जाता है। वह सन्तानवती होकर भी आदर्श विधवा का जीवन व्यतीत करती है।

सन्तान जहाँ जीवन का सम्बल होती है, वहीं वैधव्य में दायित्व और चिन्ता का कारण भी। 'आधार' कहानी की अनूपा के माध्यम से लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि जीने का आधार मिलने पर स्त्री वैधव्य के कष्ट-साध्य जीवन को भी झेल जाती है। युवा मथुरा की अकस्मात् मृत्यु विधवा अनूपा को झकझोर देती है। उसके रूप, गुण के कारण सास-ससुर, उसका विवाह उसके पाँचवर्षीय देवर से कर देने का आश्वासन दे,उसे अन्यत्र विवाह करने से रोक देते हैं। अनूपा तेरह वर्ष तक देवर का पालन-पोषण करती है तथा उसे पति-रूप में पाने की भावना भी रखती है किन्तु क्रमशः उसका पत्नी-भाव मातृ-प्रेम में परिणत हो जाता है। अतः वह सगाई के दिन निश्चय करती है कि "जिसके नाम पर चौदह वर्ष बैठी रही, उसी के नाम पर अब भी बैठी रहूँगी। मैंने समझा था कि मरद के बिना औरत से रहा न जाता होगा। मेरी तो भगवान ने इज्जत-आबरू से निबाह दी। जब नई उमर के दिन कट गए, तो अब कौन चिन्ता है।···जैसे अब तक उसे पाला, उसी तरह उसके बाल-बच्चों को पालूँगी।"[2] लेखक ने उसका चित्रण अनूठे ढंग से किया है तथा समय के साथ उसके हृदय को अपने आदर्शों के अनुरूप परिवर्तित कर दिया है।

'बेटों वाली विधवा' में फूलमती को अपने चार आज्ञाकारी पुत्रों और सेवा करने वाली पुत्रवधुओं का आधार प्राप्त है, जिससे वह प्रारंभ में वैधव्य को उतना कष्टसाध्य नहीं समझती। 'मन्दिर' कहानी की सुखिया, 'मृतक भोज' की सुशीला, 'माँ' की करुणा भी अपने सन्तान के लालन-पालन में व्यस्त रहकर पति के अभाव को सहने का प्रयास करती हैं किन्तु सन्तान की मृत्यु अथवा प्रतिकूलता उनको तोड़ देती है। सुखिया बच्चे के साथ ही प्राण त्याग देती है। सुशीला पुत्र को निरोग कर स्वयं मृत्यु का वरण करती

---

1. हंस, फरवरी, 1937 ('नारी जीवन की कहानियाँ' में भी संकलित), पृष्ठ 77
2. मानसरोवर, भाग 3, पृष्ठ 79

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

है तथा करुणा और फूलमती सन्तान की प्रतिकूलता के कारण दु:खी हो प्राण त्यागती हैं। जिन विधवाओं के पास पुत्री होती है, उनकी पीड़ा द्विगुणित हो जाती है। उसकी सुरक्षा और विवाह की चिन्ता में वे घुलती जाती हैं।[1] 'शूद्रा' कहानी की परिश्रमी और स्वाभिमानी शूद्र विधवा गंगा अपनी पुत्री के साथ भाड़ झोंककर जीविकोपार्जन करती है। सतीत्व-रक्षा हेतु उसने 'न कोई दूसरा घर किया था, न कोई दूसरा धन्धा ही करती थी।'[2] लोकापवाद और मिथ्या सन्देह के निवारणार्थ वह तीर्थ यात्राएँ भी करती है किन्तु बिरादरी में पुत्री के योग्य वर न मिलने पर एक परदेशी युवा कहार के साथ उसका विवाह कर उसे घर जमाई बना लेती है। अन्यायी समाज को उसका इतना-सा सुख भी सह्य नहीं होता। मिथ्यापवादों से शंकित दामाद पुत्री को छोड़ कर चला जाता है और तब पुत्री की वेदना गंगा को और अधिक सालती है। वह जिस वृद्ध ब्राह्मण के साथ उसे उसके पति के पास भिजवाती है, वह उसे मिर्च-देश पहुँचा देता है जहाँ से वह फिर नहीं लौटती और गंगा वेदना के अथाह सागर में डूब जाती है।

'शांति' कहानी की गोपा की व्यथा-कथा भी गंगा जैसी ही है। वह युवावस्था में उस समय विधवा हो जाती है, जब उसका रूप-लावण्य अपने पूरे निखार पर था। पति को अव्याहत निभाने की सुकीर्ति अर्जित करने तथा पुत्री को योग्य बनाने की आकांक्षा से वह घोर अर्थाभाव सहती है किन्तु दूसरा विवाह नहीं करती। पुत्री के विवाह में ऋण लेकर भी सामर्थ्य से अधिक व्यय करती है। वह कहती है—"मैं तो सदैव उन्हें अपने अन्दर बैठा पाती हूँ। जो कुछ कर रहे हैं, वह कर रहे हैं। मैं मन्द बुद्धि स्त्री भला अकेली क्या कर लेती ? वह मेरे सहायक हैं, वही मेरे प्रकाश हैं।"[3] पुत्री द्वारा पति की चरित्रहीनता पर क्षुब्ध हो आत्महत्या कर लेने पर भी वह हताश नहीं होती, क्योंकि उसे गर्व है कि उसकी पुत्री ने सतीत्व जनित मान-मर्यादा तथा आदर्श के लिए प्राणोत्सर्ग किया है। 'अलग्योझा' की पन्ना, 'प्रायश्चित्त' की रामेश्वरी भी यावत जीवन वैधव्य का निर्वाह करनेवाली स्त्रियाँ हैं किन्तु वे कहानी में मुख्य पात्रा के रूप में नियोजित नहीं हैं। उक्त कहानियाँ क्रमशः संयुक्त कुटुम्ब के विघटन तथा आणविक परिवारों के गठन के दुष्परिणामों तथा अपराध-बोध की समस्याओं से सम्बद्ध हैं। विधवाएँ इनमें उपस्थापित समस्याओं को उभारने के लिए ही आई हैं।

(ख) वैधव्य को आंशिक स्वीकृति देनेवाली—आदर्श भारतीय नारी का

---

1. "दरिद्र विधवा के लिए इससे बड़ी और क्या विपत्ति हो सकती है कि जवान बेटी सिर पर सवार हो ? लड़के नंगे पाँव पढ़ने जा सकते हैं; चौका-बर्तन भी अपने हाथ से किया जा सकता है; रूखा-सूखा खाकर निर्वाह किया जा सकता है; झोंपड़े में दिन काटे जा सकते हैं; लेकिन युवती कन्या घर में नहीं बिठाई जा सकती।"—निर्मला, प्रेमचन्द, पृष्ठ 38-39
2. मानसरोवर, भाग 2, पृष्ठ 280
3. वही, भाग 1, पृष्ठ 85

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गौरव प्रतिकूलताओं के मध्य भी अपना सतीत्व बनाए रखने में माना गया है। स्त्री-चरित्र की पवित्रता भी उसके पति के साथ दाम्पत्य सम्बन्ध-निर्वाह तक सीमित होती है। लीक से किंचित् हटकर चलते ही उसे कुलटा, पापिन, चरित्रहीना आदि के लांछनमय अभिधानों से बेधा जाने लगता है। नैतिकता की इस लक्ष्मण रेखा में सधवा नारी तो बँध सकती है किन्तु निरीह अशिक्षित बाल विधवाएँ अथवा युवती विधवाएँ जिनके पास शेष जीवन काटने के लिए अर्थ और अभिभावक दोनों न हों, पति-कुल से निर्वासित हों, ऐसी आचार संहिताओं का कोई मूल्य नहीं होता। समाजानुमोदित शास्त्रीय परम्पराओं का निर्वाह करते हुए भी जब उनकी अतृप्त कामवासना किसी कामुक पुरुष के प्रेम-प्रलोभन द्वारा उद्दीप्त की जाकर असह्य हो जाती है तो वे पुनर्विवाह कर दाम्पत्य सुख पाने के लिए व्यग्र हो उठती हैं। मनोकामना की अपूर्णता मानसिक उन्मत्तता का रूप ले उन्हें पथभ्रष्ट करती है और वे पुरुष तथा उसके द्वारा स्वहित में स्थापित सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करने लगती हैं। लोकनिंदा और सामाजिक दबाव कभी-कभी उनके लिए प्राणघातक भी सिद्ध होते हैं।[1]

'नैराश्य लीला' की कैलाश कुमारी विवाह का अर्थ समझने से पूर्व ही विवाहित और वैधव्य की विभीषिका से अवगत होने से पूर्व विधवा हो जाती है। उसके माता-पिता उसकी एकांतप्रियता से चिन्तित हो, उसे मनोरंजन तथा आमोद-प्रमोद की ओर आकर्षित करते हैं किन्तु जब यही आमोद-प्रमोद उसका जीवन बन जाता है तो निन्दा और आलोचना से भयभीत हो माता-पिता उसे धर्म की ओर प्रवृत्त करते हैं। पूजा-पाठ, स्नान-ध्यान, स्वाध्याय-व्रत में लिप्त हो जब वह संन्यास लेने का निर्णय करती है तो माता-पिता पुनः उसके जीवन-प्रवाह को अध्ययन-अध्यापन की ओर मोड़ देते हैं किन्तु उसमें उसकी अनुरक्ति भी लोक-चर्चा का विषय बन जाती है। कैलासी का धैर्य चुक जाता है और वह पुरुष और पुरुष-निर्मित समाज के प्रति आक्रोश व्यक्त करती हुई कहती है—"मैं अपने आत्म-सम्मान की रक्षा आप कर सकती हूँ। मैं इसे अपना घोर अपमान समझती हूँ कि पग-पग पर मुझ पर शंका की जाए। नित्य कोई चरवाहों की भाँति मेरे पीछे लाठी लिए घूमता रहे कि किसी खेत में न जा पड़ूँ।"[2] तथा 'कुछ मालूम भी तो हो कि संसार मुझसे क्या चाहता है ? मुझ में जीव है, चेतना है, जड़ क्योंकर बन जाऊँ। मुझसे यह नहीं हो सकता कि अपने को अभागिनी, दुखिया समझूँ

---

1. "विधवा पर दोषारोपण करना कितना आसान है। जनता को उसके विषय में नीची-से-नीची धारणा बनाते देर नहीं लगती, मानो कुवासना ही वैधव्य की स्वाभाविक वृत्ति है, मानो विधवा हो जाना मन की सारी दुर्वासनाओं, सारी दुर्बलताओं का उमड़ आना है।"

—प्रतिज्ञा, प्रेमचन्द, पृष्ठ 82-83

2. मानसरोवर, भाग 3, पृष्ठ 59

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

और टुकड़ा रोटी खाकर पड़ी रहूँ।···संसार मुझे जो चाहे समझे, मैं अपने को अभागिनी नहीं समझती।''[1] अपनी आत्मरक्षा को ही सर्वोपरि मानकर वह पुरुष समाज के प्रति प्रतिहिंसा-भाव से पूरित हो सभी समाजानुमोदित शास्त्रीय विधि-निषेधों को त्याग सधवाओं की भाँति रहने लगती है। लेखक ने उसकी इस प्रतिक्रिया के मूल में सामाजिक अत्याचार को ही माना है जिससे पाठक की सहानुभूति अन्त तक कैलासी के साथ ही रहती है। उन्होंने उसे उसी आत्मबल से संयुक्त किया है, जिसे वे बाल-विधवाओं में देखना चाहते थे।

'सुभागी' कहानी की बाल-विधवा सुभागी, युवावस्था में सतीत्व-पालन का संकल्प करती है और अपनी जाति में विधवा पुनर्विवाह प्रचलित होने पर भी विवाह नहीं करती। वह भाई के प्रतिकूल होने पर माता-पिता के साथ अलग रहती है तथा अथक परिश्रम कर कृषि द्वारा माता-पिता का भरण-पोषण भी करती है। ऋण लेकर रुग्ण माता-पिता के लिए दूध-घी का प्रबन्ध करती है। जब वह ऋण की अन्तिम किश्त देने जाती है तो उसके रूप, गुण और परिश्रम से प्रभावित ठाकुर उसे अपनी पुत्रवधू बनाने का प्रस्ताव करते हैं—''मेरी इच्छा है कि तुम मेरी बहू बनकर मेरे घर को पवित्र करो··· ।'' सुभागी उनकी आज्ञा मान पुनः दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करती है, दिखावे के लिए वैधव्य नहीं ओढ़ती।

'नागपूजा' की तिलोत्तमा डोली उठने से पूर्व ही नाग द्वारा पति को काटे जाने से वैधव्य को प्राप्त होती है। पुनः वैधव्य की अनिष्ट शंका से वह दूसरा विवाह नहीं करना चाहती किन्तु माता-पिता के अनुरोध पर चुप हो जाती है। दूसरी बार भी घर छोड़ने से पूर्व ही उस पर वैधव्य टूट पड़ता है। वह अपना जीवन भक्ति और देवाराधना में लगाती है किन्तु तीन वर्ष वैधव्य-पीड़ा भोगने के पश्चात् उसे तीसरी बार सर्प-विशेषज्ञ दयाराम की पत्नी बनना पड़ता है। सर्प की प्रेतात्मा से ग्रस्त होने के कारण वह दाम्पत्य सुख से वंचित रहती है। अन्ततः सर्प को गोली मारकर पति उसे प्रेतात्मा से मुक्त करता है। प्रेमचन्द के समय में इस प्रकार के विवाह नहीं होते थे किन्तु उन्होंने प्रेतात्मा को माध्यम बना उसका वर्णन कर अपेक्षित साहस का परिचय दिया है।

'प्रेम की होली' की गंगी भी बाल-विधवा है और अपने वैधव्य और उससे जुड़े प्रतिबन्धों से परिचित भी, किन्तु होली के अवसर पर ठाकुर गरीबसिंह के गाने पर मुग्ध हो वह उसके प्रेमाकर्षण में बँध जाती है। गरीबसिंह भी उससे प्रेम करते हैं किन्तु विधवा से विवाह करने का मनोबल न जुटा सकने के कारण अन्दर ही अन्दर घुलते जाते और बीमार हो स्वर्ग प्रस्थान कर जाते हैं। गरीबसिंह की चिता के साथ निरीह गंगी के प्रेम की भी चिता जल जाती है। वह दोहरी त्रासदी का शिकार बनती है। ठाकुर

1. मानसरोवर, भाग 3, पृष्ठ 59

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

की मृत्यु उसकी करुणा को और अधिक गहराती तथा पीड़ा को 'निरवधिक' बना देती है। 'स्वामिनी' की युवती विधवा रामप्यारी ससुर द्वारा परिवार का स्वामित्व प्राप्त कर पति-वियोग को भूलने का प्रयास करती है किन्तु देवर-देवरानी को दाम्पत्य सुख भोंगते देख उसे अपना जीवन नीरस मरुस्थल के सदृश वीरान लगने लगता है। ससुर की मृत्यु और देवर के नौकरी के लिए शहर जाते ही उसकी बलात् दबाई काम-वासना उद्दीप्त हो तुष्टि चाहने लगती है। वह अविवाहित हलवाई जोखू को अपने जीवन-साथी के रूप में अपनाने के लिए व्यग्र हो उठती है तथा विधवाओं की सी वेशभूषा त्याग सधवाओं जैसा वेश-विन्यास धारण करने लगती है। लेखक ने स्पष्ट किया है कि प्रेम से कभी तृप्ति नहीं होती, अतः प्रायः अत्यंत दृढ़ चरित्र वाली स्त्रियाँ ही उसे पाने के लोभ से बच पाती हैं।

स्वामित्व ने यदि रामप्यारी को वैधव्य विस्मृत करा दिया था तो 'जेल' की क्षमा देवी को देश-सेवा का संकल्प। स्वतन्त्रता-संग्राम में जलियाँवाला हत्याकांड में पति व पुत्र को खो विक्षिप्त हुई क्षमा अन्ततः उनके ही पथ का अनुगमन कर अपने मन को शान्ति देती है। लेखक ने पुनर्विवाह न होने पर विधवाओं को साहित्य-अध्ययन, देश-सेवा, समाज-सेवा आदि कार्यों में लगने की प्रेरणा दी है।

'बालक' कहानी की गोमती विधवा आश्रम से भागती है। जिन पुरुषों के साथ आश्रम वाले उसे तीन बार बसाने का प्रयास करते हैं, उनके पास भी वह टिक नहीं पाती क्योंकि उसे अपेक्षित प्रेम नहीं मिलता। गंगू ब्राह्मण उसके गर्भवती होने पर भी उससे विवाह करता है, क्योंकि उसने उससे विवाह इसलिए नहीं किया था कि वह देवी है, बल्कि इसलिए किया था कि वह उससे सच्चा प्रेम करता था। वह उसे बालक सहित अपना लेता है। 'अलग्योझा' की सन्तानवती मुलिया को उसका देवर केदार अपना लेता है।

(ग) वैधव्य को पूर्ण अस्वीकृति देने वाली— प्रेमचन्द के समय तक विधवा-पुनर्विवाह होने लगे थे किन्तु उनका प्रचलन कुछ गिने-चुने प्रगतिशील परिवारों तक ही सीमित था। प्रेमचन्द ने बाल-विधवाओं को अभिभावकों के कारण पुनर्विवाह में बँधते दिखाया है किन्तु 'नरक का मार्ग' कहानी की कथानायिका वैधव्य को पूर्ण अस्वीकृति देने का साहस रखती है। अभिभावकों द्वारा वृद्ध के गले मढ़ी जाने पर वह सच्चे प्रेम के लिए तरसती रहती है और इसलिए पति की मृत्यु पर दुःखी होने के स्थान पर मुक्ति का अनुभव करती है—"जिन लोभी स्वार्थी माता-पिता ने मुझे कुएँ में ढकेला, जिस पाषाण हृदय प्राणी ने मेरी माँग में सेंदुर डालने का स्वाँग किया, उनके प्रति मेरे मन में बार-बार दुष्कामनाएँ उठती हैं, मैं उन्हें लज्जित करना चाहती हूँ। मैं अपने मुँह में कालिख लगाकर उनके मुख में कालिख लगाना चाहती हूँ।"[1] प्रेम की खोज में घर से

1. मानसरोवर, भाग 3, पृष्ठ 28

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

निकलने पर वह एक कुट्टिनी बुढ़िया के चंगुल में फंसकर वेश्यालय पहुँच जाती है। कुलटाओं की विषय-वासना उसका काम्य न थी, वह तो दाम्पत्य जीवन का पवित्र प्रेम पाने की आकांक्षी थी किन्तु विधवा रूप में अतृप्त काम-पीड़ा भोगने की अपेक्षा वह उस अधम जीवन को जीने के लिए तैयार हो जाती है।

'विश्वास' कहानी की शिक्षिता, सुन्दर, वाक्-चतुर मिस जोशी विधवा होते हुए भी स्वयं को मिस कहती हैं तथा ऐश्वर्य और विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करती हैं। वे बम्बई के विवाहित गवर्नर श्री जौहरी से प्रेम करती हैं। उनके इस स्वच्छन्द कलुषित प्रेम का उद्‌घाटन करने वाले जननेता को यद्यपि जौहरी के आदेशानुसार गिरफ्तार कर लिया जाता है किन्तु उनका स्पष्टवादी, निर्भीक किन्तु सहज व्यवहार मिस जोशी को इतना प्रभावित करता है कि वे अपने भ्रष्ट जीवन को त्याग उनके प्रति समर्पित हो अपना उद्धार करती है। प्रेमचन्द ने इस प्रकार वैधव्य जीवन की पवित्रता को नष्ट करने वाली स्त्रियों को प्रायश्चित्त कर पुनः सन्मार्ग पर आते चित्रित किया है।

(आ) वेश्या रूप

यद्यपि यह किसी भी समाज के लिए अत्यंत लज्जास्पद है कि सृष्टि की संचालिका नारी को शरीर का व्यवसाय करना पड़े, तथापि गणिकाओं और देवदासियों के रूप में वेश्या-प्रथा प्राचीन काल से ही चलती आ रही है। सौन्दर्य और संगीत-नृत्य आदि कलाओं में पारंगत गणिकाएँ समाज में विशेष आकर्षण और सम्मान पाती थीं। स्वयं या अभिभावकों द्वारा धार्मिक अन्धविश्वास के कारण मन्दिरों में देवदासी बनी युवतियाँ भी रूढ़िवादियों की दृष्टि में आदर और श्रद्धा का पात्र होती थीं किन्तु क्रमशः वे पुरुषों की यौन-लिप्सा की तुष्टि का माध्यम रह गईं। वेश्याओं को मंगलमुखी कहा जाता था तथा जन्म, विवाह अथवा धार्मिक समारोहों में उनका नृत्य-गान समृद्धि का सूचक होने के कारण अनिवार्य माना जाता था। रसिक धनाढ्यों के जीवन का तो वे अपरिहार्य अंग ही होती थीं। ग्रामीण क्षेत्र भी इस समस्या से अछूते नहीं थे। वहाँ भी सशुल्क और निःशुल्क दोनों प्रकार की वेश्याएँ मिलती थीं किन्तु वहाँ यह समस्या इतनी प्रचंड नहीं थी।[1] शहरों में यह धनलिप्सु पुरुषों (दलालों) और कुटनियों द्वारा जीविकोपार्जन के

1. "ग्रामीण क्षेत्रों में वेश्यावृत्ति अधिक प्रचलित नहीं है। चोरी-छिपे ग्रामीण घरों में दो-चार उदाहरण भले ही मिल जाएँ किन्तु खुलेआम चकलों की स्थापना यह शहर की विशेषता है। इसका मुख्य कारण यही है कि गाँव का नैतिक मापदण्ड शहर के नैतिक मापदण्ड से भिन्न है। इसके अतिरिक्त शहर की नारी को असहाय परिस्थिति और मानसिक यातनाओं का जितना सामना करना पड़ता है, उतना गाँव की नारी को नहीं करना पड़ता। कुछ ग्रामीण जातियों में विधवा-विवाह और तलाक की भी प्रथा प्रचलित है। शहर की नारी की भाँति गाँव की नारी आर्थिक रूप से इतनी परतन्त्र नहीं होती कि आवश्यकता पड़ने पर जीविका की समस्या हल न कर सके। नारी द्वारा अर्थोपार्जन गाँव में बुरा नहीं माना जाता, अतः गाँव में वेश्यावृत्ति नारी की चारित्रिक दुर्बलता अथवा पुरुष की कामलोलुपता के ही कारण होती है।" —हिन्दी उपन्यास में नारी-चित्रण, बिन्दु अग्रवाल, पृष्ठ 116-117

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रूप में ग्रहण कर लिए जाने के कारण अधिकाधिक उग्र रूप लेती गई।

प्रेमचन्द युग में समाज-सुधारक इस समस्या से अवगत तो थे किन्तु अधिकांश को वेश्याओं से वास्तविक सहानुभूति नहीं थी। वे इनके चक्करों में पड़ने की अपेक्षा उन्हें उनके हाल पर छोड़ देना अधिक श्रेयस्कर समझते थे। जिन सुधारकों ने कुछ सुझाव दिए भी, उनके समक्ष भी समाज का लाभ ही प्रमुख रहा। अत: उन्होंने उन्हें बस्ती से दूर रखने, सार्वजनिक स्थानों में उनका प्रवेश निषिद्ध करने, उनके नाच-गाने से युक्त जलसों पर भारी टैक्स लगाने के सुझाव ही दिए। यद्यपि इन सुझावों में से कुछ को सन् 1925 में वैधता भी मिल गई तथापि इस समस्या का पूर्ण निराकरण संभव नहीं हो पाया।

प्रेमचन्द एक सजग युगद्रष्टा तथा कर्मठ समाज-सुधारक थे, अत: उन्होंने वेश्याओं की समस्या को केवल सतही दृष्टि से न देखकर उसे सामाजिक और मनोवैज्ञानिक धरातल पर विवेचित किया। उन्होंने वेश्याओं को घृणा का पात्र न मानकर उनके कर्म को घृणित बताया[1] तथा उनके पतित होने के कारणों को उद्घाटित करने और उसका यथोचित निराकरण प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया। उनका उपन्यास 'सेवा सदन' इस दृष्टि से एक युगान्तरकारी रचना है। उन्होंने नारी की इस पतितावस्था के लिए पुरुषों की कामुकता, स्वार्थपरता, नारी के प्रति उनके संदिग्ध दृष्टिकोण और अनादर भाव, पारिवारिक कलह और दूषित सामाजिक-व्यवस्था, अर्थाभाव में जीती नारियों की सुख-विलास, आभूषणादि की लालसा तथा परिस्थितियों और परिवेश के दबाव और प्रभाव को कारण माना। उनके अनुसार पुरुष-प्रधान समाज में नारी और पुरुष के नैतिकता के मानदण्ड पृथक् और एकपक्षीय होते हैं। शोषक रूप में पुरुष चरित्रभ्रष्ट होने पर भी समाज में प्रतिष्ठित रहता है, कुरूप, अधेड़, विधुर या वृद्ध होने पर भी विवाह रचा सकता है, किन्तु नारी का तनिक-सा स्खलन भी उसे सह्य नहीं होता। पुरुष द्वारा परित्यक्त, संरक्षणहीन नारी कामुक परपुरुष की कुदृष्टि का शिकार होती है और दलालों तथा कुटनियों के मायाजाल में फँस कर वेश्या-वृत्ति अपनाने के लिए बाध्य होती है। बाल-विवाह तथा अनमेल विवाह भी इस समस्या को जन्म देते हैं। असमय वैधव्य, नारी को नितान्त निस्सहाय बना देता है। साम्पत्तिक अधिकार से वंचित, अशिक्षित नारी परान्न पर निर्भर रहने के लिए बाध्य होती है। परिवार में भी निरन्तर विग्रह, उपेक्षा, तिरस्कार उसे घर से निकलकर जीविकोपार्जन करने और कुचक्रों में फँस घृणित जीवन अपनाने के लिए बाध्य करता है। प्रेमचन्द की 'निर्वासन'

1. "हमें उनसे घृणा करने का कोई अधिकार नहीं है। यह उनके साथ घोर अन्याय होगा। यह हमारी ही कुवासनाएँ, हमारे ही सामाजिक अत्याचार, हमारी ही कुप्रथाएँ हैं जिन्होंने वेश्या का रूप धारण किया। यह दालमण्डी हमारे ही जीवन का कलुषित प्रतिबिम्ब, हमारे ही पैशाचिक अधर्म का साक्षात्कार स्वरूप है। हम किस मुँह से उनसे घृणा करें।"—सेवासदन, पृष्ठ 183

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कहानी की मर्यादा मेले में खो जाने पर छह-सात दिन स्वयंसेवकों और दलालों के मध्य संघर्ष करते हुए व्यतीत करती है और किसी प्रकार भागकर पति के पास पहुँचती है किन्तु पति, जो नारी को एक रात भी घर से बाहर रहना पाप समझता है, उसे स्वीकारने के लिए तैयार नहीं होता। वह उसे बच्चे को भी प्यार नहीं करने देता तथा समस्त अनुनय-विनय को निष्ठुरतापूर्वक ठुकरा घर से निकाल देता है। यद्यपि कहानी का वाचन तंत्र इस प्रकार का है कि लेखक ने मर्यादा को अधिक प्रतिवाद करते नहीं दिखाया है, जिससे अस्वाभाविकता आई है किन्तु उसने यह सिद्ध कर दिया है कि परित्यक्त नारी विवश हो इस गर्हित जीवन को अपनाती है। 'शूद्रा' कहानी की ब्राह्मणी तथा 'इज्जत का खून' की जरीना भी पुरुषों के अत्याचारों के कारण पतित होती हैं। स्वयं घर का परित्याग करने वाली स्त्रियाँ भी कुटनियों के जाल में फँस कर इस नरक में प्रवेश करती हैं, यथा 'नरक का मार्ग' की कथा-नायिका जो अनमेल विवाह के कारण निरन्तर पति की संदिग्ध दृष्टि एवं मिथ्या लांछनों से तंग आकर वैधव्य में भी मुक्ति की साँस लेती है तथा सच्चे प्रेम की खोज में घर छोड़ कुटनी के माया-जाल में फँस वेश्यालय में पहुँच जाती है। लेखक ने नारी द्वारा उठाए जानेवाले इस पग की कटु विगर्हणा की है।

परिस्थिति और परिवेश का दबाव और प्रभाव भी इस समस्या का एक कारण बनता है। अर्थाभाव के कारण वेश्यावृत्ति अपनानेवाली वेश्याओं की सन्तानों को परम्परागत रूप में इसी वृत्ति को अपनाना पड़ता है, क्योंकि समाज और पुरुष उनके प्रति उदार दृष्टिकोण नहीं अपना पाता। यदि वे शिक्षा प्राप्त कर आदर्श पत्नीत्व और मातृत्व को ग्रहण भी करना चाहें तो उन्हें उसकी स्वतंत्रता नहीं होती। यदि पुरुष उन्हें अपनाते भी हैं तो भी वे उद्धारकर्ता के दंभ से पूरित उन्हें पत्नी का पद नहीं दे पाते। 'वेश्या' की माधुरी तथा 'आगा-पीछा' की वेश्या-पुत्री श्रद्धा को दयाकृष्ण तथा भगतराम अपनाने का मनोबल नहीं जुटा पाते, जबकि 'दो कब्रें' की सुलोचना प्रो. रामेन्द्र द्वारा पत्नीत्व प्रदान किए जाने पर भी सन्देह और लांछन से क्षुब्ध हो आत्मघात करती है। कुछ स्त्रियाँ अपनी ही धनलिप्सा, आभूषण-प्रियता या चारित्रिक दुर्बलता के कारण पतित होती हैं, यथा 'लांछन' कहानी की देवी रानी तथा 'ऐक्ट्रेस' की तारा। देवी रानी अपने सौन्दर्य की प्रशंसा और कृत्रिम सहानुभूति की लालसा के कारण पति-निषेध के बावजूद गुण्डों के मुँह लगती और पतित होती है। तारा को उसका कटु प्रेम अनुभव बाजारू स्त्री बना देता है। प्रेमचन्द ने वेश्याओं को शिक्षित एवं स्वावलम्बी बनाकर इस समस्या को सुलझाने का सुझाव दिया। उन्होंने इनके लिए पृथक् आश्रम स्थापित करने की युगानुरूप सम्मति भी दी तथा इनकी सन्तानों को इनसे पृथक् कर उन्हें योग्य बनाने और योग्य वर के साथ विवाह कर पारिवारिक जीवन में प्रतिष्ठित करने की सलाह दी। 'सेवासदन' में उनका यही दृष्टिकोण मिलता है किन्तु 'गोदान'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तक आते-आते वे समझ गए थे कि केवल प्रचारात्मक संस्थाओं द्वारा इस प्रथा का उन्मूलन संभव नहीं। उसके लिए सामाजिक व्यवस्था और दृष्टिकोण, पुरुष और नारी की मनोवृत्ति में आमूल परिवर्तन अनिवार्य है।[1]

प्रेमचन्द जीवन के मंगलपक्ष को उद्घाटित करने के पक्षधर थे, अतः उन्होंने वेश्याओं के विभिन्न चित्रों में उनके जीवन के भोग पक्ष की अपेक्षा उत्पीड़ित पक्ष को उभारा है। उनकी कहानियों में उपलब्ध वेश्या नारियों को दो उपशीर्षकों के अन्तर्गत रखकर विवेचित किया जा सकता है—(क) स्थिर वेश्या रूप का निर्वाह करनेवाली, (ख) पुरुषों के अत्याचार के कारण पतित।

(क) स्थिर वेश्या रूप का निर्वाह करनेवाली—स्थिर वेश्या रूप का निर्वाह करने वाली वेश्याओं को बहुधा यह घृणित जीवन परम्परागत उत्तराधिकार के रूप में मिलता है। प्रारंभ में चाहे उनमें इसके प्रति विरक्ति और जुगुप्सा का भाव हो भी किन्तु समाज की संकुचित दृष्टि के कारण वे इस व्यूह से निकल नहीं पातीं और क्रमशः इसी जीवन की अभ्यस्त हो जाती हैं। वे धनी पुरुषों को अपने हाव-भाव और कामचेष्टाओं से वशीभूत कर धन-आभूषण ऐंठने की कला में प्रवीण स्वार्थी और लोभी होती हैं। वे पुरुषों को पहचानने की कला में भी दक्ष होती हैं तथा ग्राहक देखकर बात करने का हुनर जानती हैं। ऐसा करना उनके लिए अनिवार्य होता है क्योंकि यही उनकी वृत्ति की प्रकृति है तथा इसके बिना जीविका संभव नहीं। 'रामलीला' कहानी की आबादी जान इन चेष्टाओं का पुंजीभूत रूप है। वह चौधरी द्वारा रामलीला के लिए चन्दा एकत्र करने के लिए आमंत्रित की जाती है। जमींदारों और सामन्तों की शोषण नीति से परिचित होने के कारण वह चन्दा उगाहने के लिए तभी तैयार होती है, जब उजरत के सौ रुपये और एकत्र राशि का आधा उसे दिया जाए। वह वाक्पटु और अपने पेशे में प्रवीण है। अतः चौधरी के चंगुल में न फँस कर उनसे अपनी शर्त मनवा लेती है। तथापि चौधरी घाटे में नहीं रहते, क्योंकि वह उनकी अपेक्षा से अधिक धन उन्हें एकत्र करके दे देती है।

वस्तुतः आबादीजान धार्मिक पाखंड के उद्घाटन का माध्यम है। किन्तु लेखक ने संकेतित कर दिया है कि ऐसी वेश्याएँ असाध्य रोग या ज्वालामुखी की भाँति होती हैं जिन्हें सुधारना संभव नहीं होता।[2] उनकी कहानियों में इस प्रकार के चरित्र बहुत कम हैं। लेखक ने उसके हाव-भाव तथा प्रदर्शन और कुचेष्टाओं का वर्णन पुरुष समाज को उससे विरत करने के लिए किया है। नारी के प्रति अपनी सदाशयता के कारण प्रेमचन्द ने ऐसी स्त्रियों के कुत्सित व्यवहार के अन्तराल में छिपे सहज नारीत्व और कोमल गुणों

1. "जब तक समाज की व्यवस्था ऊपर से नीचे तक बदल न डाली जाए, इस तरह की मंडली से कोई फ़ायदा न होगा।" —गोदान, पृष्ठ 272
2. देखिए : सेवासदन, पृष्ठ 292

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

का संचार दिखाया है। 'वेश्या' कहानी की माधुरी भी पेशेवर वेश्या है किन्तु वह विभिन्न व्यक्तियों से भिन्न प्रकार का आचरण करती है। सिंगारसिंह की कामुक लिप्सु वृत्ति को पहचान जाने के कारण वह उससे रुपया और आभूषण लेती रहती है। किन्तु दयाकृष्ण की सहृदयता, निष्कपटता और भद्र समर्पण से प्रभावित हो उससे प्रेम करने लगती है तथा उससे विवाह कर सम्मानित जीवन व्यतीत करने की लालसा से भर उठती है। प्रतिदान के भाव से मुक्त उसका सहज समर्पण कुलवधुओं में भी दुष्प्राप्य है।

'ऐक्ट्रेस' की तारा भी पेशेवर वेश्या बन चुकी है जो कृत्रिम प्रसाधनों द्वारा अपने जाते रूप-लावण्य को बलात् रोक पुरुषों को अपना शिकार बनाती है किन्तु कुंवर के सहज सौन्दर्य और प्रेम पर रीझ उनकी जीवन संगिनी बन जीने की अभिलाषा करती है। 'आगा-पीछा' की कोकिला अपनी पुत्री श्रद्धा को उस पंकिल वातावरण से पृथक् रखने के लिए वेश्या-वृत्ति छोड़ देती है। 'दो कब्रें' की जुहरा भी कुंवर के आश्रय को स्वामी रूप से स्वीकार लेती है, जिससे उसकी पुत्री सुलोचना का जीवन सुधर सके।

लेखक ने उक्त वेश्याओं के माध्यम से सिद्ध किया है कि विवश हो पेशे के रूप में वेश्यावृत्ति अपनाने वाली कुछ वेश्याओं में भी आदर्श एकनिष्ठ प्रेम पाकर अपना जीवनोद्धार करने की अभिलाषा और आकांक्षा होती है। इनकी आत्मा पवित्र और महान् होती है।[1] आवश्यकता पड़ने पर ये बड़े से बड़ा त्याग कर सकती हैं। 'वेश्या' कहानी की माधुरी दयाकृष्ण के प्रेम से वंचित होने पर भी अपनी वेश्या होने की हीनता और ग्लानि से भर उठती है—"तुम अब भी मन से यह स्वीकार नहीं कर रहे हो कि कोई स्त्री स्वेच्छा से रूप का व्यवसाय नहीं करती। पैसे के लिए अपनी लज्जा को उघाड़ना, तुम्हारी समझ में कुछ ऐसे आनन्द की बात है, जिसे वेश्या शौक से करती है।"[2] अपने प्रेमाधार को खो वह संसार से ही विरक्त हो जाती है—"इस बेशर्मी और बेहयायी की जिन्दगी से मुझे घृणा हो रही है। उन लम्पटों से, जिनके कुत्सित विलास का मैं खिलौना थी।"[3] पत्नीत्व भाव के खंडित होने पर वह आत्महत्या कर लेती है। जबकि तारा विवाह वाले दिन कुँवर को अपने कृत्रिम सौन्दर्य से न छलने का निश्चय कर अज्ञात स्थान पर चली जाती है। इनके माध्यम से लेखक ने वेश्याओं के मन में छिपी पातिव्रत लालसा का उद्घाटन और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। 'बालक'

---

1. देखिए : "उनमें कितनी धार्मिक श्रद्धा, पाप-जीवन से कितनी घृणा, अपने जीवनोद्धार की कितनी अभिलाषा है।...उन्हें केवल एक सहारे की आवश्यकता है जिसे पकड़कर वह बाहर निकल आएँ।"
—सेवासदन, प्रेमचन्द, पृष्ठ 211
2. मानसरोवर, भाग 2, पृष्ठ 47
3. वही, पृष्ठ 49

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

की गोमती तथा 'दो कब्रें' की जुहरा को पुरुष का सम्बल प्राप्त हो जाता है। अतः वे पत्नी रूप में अधिक सफल रहती हैं।

परम्परागत वंश वृत्ति के रूप में वेश्यावृत्ति का उन्मूलन भी सहज नहीं होता। कोकिला (आगा-पीछा) के इस पंक से निकल आने में उसका साहस ही निहित है। वेश्या-पुत्रियों को अपनी माताओं के पापों का प्रक्षालन स्वयं इस वृत्ति को अपना कर अथवा आत्मघात करके करना पड़ता है। 'आगा-पीछा' में वेश्या कोकिला अपनी पुत्री श्रद्धा को उच्च शिक्षा दिला सर्वगुणसम्पन्न बना अच्छे वर के साथ विवाह करने का स्वप्न देखती है, किन्तु श्रद्धा को सामाजिक तिरस्कार सहना पड़ता है। "जिनके साथ वह पढ़ती थी, वे उससे बात भी न करना चाहती थीं।···विद्यालय में भले घर की लड़कियाँ उसके सहवास में अपना अपमान समझती थीं। रास्ते में लोग उँगली उठाकर कहते—कोकिला रंडी की लड़की है। उसका सिर झुक जाता···।"[1] क्रमशः उसे पुरुष जाति से ही घृणा हो जाती है। माता द्वारा प्रेम और विवाह के सम्बन्ध में पूछने पर वह कहती है—"प्रेम मानव जीवन का श्रेष्ठ अंग है। यदि ईश्वर की ईश्वरता कहीं देखने में आती है, तो वह केवल प्रेम में। जब कोई ऐसा व्यक्ति मिलेगा जो मुझे वरने में अपनी मानहानि न समझेगा तो मैं तन-मन-धन से उसकी पूजा करूँगी।"[2] भगतराम के रूप में अपने आदर्श पुरुष को पाकर भी वह अपने दूषित रक्त के कारण उसका वरण करने में असमर्थ रहती है।[3] पहले उसकी माता एक वेश्यापुत्री को पुत्रवधू नहीं बनाना चाहतीं तो बाद में स्वयं भगतराम उसकी शुचिता के प्रति आश्वस्त नहीं हो पाता—"मुझे रह-रहकर यह भ्रम होता था, क्या तुम खून के असर का नाश कर सकती हो? क्या तुम एक ही बार अपनी परम्परा की रीति छोड़ सकोगी? क्या तुम जन्म के प्राकृतिक नियमों को तोड़ सकोगी?"[4] वह भ्रम के कारण अपनी अपूर्ण साध लिए ही संसार से प्रस्थान कर जाता है और श्रद्धा छूट जाती है प्रेम की निठुर वेदी पर लैला, मजनूं, शीरीं-फरहाद और अन्य सहस्रों निराश प्रेमियों की भाँति बलिदान होने के लिए।

'दो कब्रें' की सुलोचना भी इसी अभिशाप का शिकार है। यद्यपि प्रो. रामेन्द्र वेश्या जुहरा की पुत्री सुलोचना के रूप, सौन्दर्य, उच्चशिक्षा और प्रेम पर मुग्ध हो स्वेच्छा से उससे विवाह करते है किन्तु समाज उन्हें जीने नहीं देता। उनके मित्रों की कुदृष्टि उस

1. मानसरोवर, भाग 4, पृष्ठ 97
2. वही, पृष्ठ 98
3. देखिए : "रंडी की बेटी चाहे इन्नर की परी हो, तो भी रंडी की बेटी है। हम तुम्हारा विवाह वहाँ न होने देंगे।"—वही, पृष्ठ 104
4. वही, पृष्ठ 109

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पर रहती है। जिन स्त्रियों का दामन स्वयं रागयुक्त था, वे भी स्वयं को कुलवधू समझ उसके पास आने से कतराती थीं। इस वस्तु-स्थिति से खिन्न तथा क्षुब्ध प्रो. रामेन्द्र उसे और स्वयं को घर तक सीमित कर लेते हैं। पुत्री के जन्म पर जुहरा की भतीजी गुलनार के यहाँ से बधावा आने और सम्भ्रान्त परिवार द्वारा आयोजन का बहिष्कार करने पर उनका सारा आक्रोश सुलोचना पर उतरता है और वह उसे माँ की मजार पर भी नहीं जाने देते। हठ करने पर कहते हैं—"जाओ, तुम्हारे लिए क्या, यह न सही, दूसरा घर सही।"[1]

उनके तिरस्कार से खिन्न सुलोचना का अन्तिम विकल्प आत्मघात होता है। यद्यपि लेखक ने उसे एक कुलीन पिता द्वारा पालित पोषित कराया है तथा जुहरा को भी मृत्यु का ग्रास बना उसके मार्ग से हटा दिया है, तथापि वे उसे पुनर्वास नहीं दिला पाये हैं। उक्त दोनों कहानियों के अन्त में उनका आदर्श यथार्थ पर हावी हो उसे अस्वाभाविक बना देता है। डॉ. गौतम सचदेव की स्थापना है कि "इन यथार्थ परिणतियों को अपने आदर्शवाद से मंडित करके प्रेमचन्द जो कुछ चारित्रिक परिवर्तन आगे लाते हैं, वह अस्वाभाविक प्रतीत होता है। यद्यपि सुलोचना का चरित्र यथार्थ है, लेकिन उसके पति रामेन्द्र की उसके मरणोपरान्त वफादारी और मजार-पूजा विचित्र लगती है। इसके विपरीत श्रद्धा का सन्देहशील भगतराम के प्रति अनन्य निष्ठा भाव उस दशा में और भी विचित्र लगता है, जबकि वह इसे छोड़कर मर भी जाता है।"[2] माधुरी, श्रद्धा और सुलोचना की नियति यह स्पष्ट कर देती है कि शिक्षित युवकों में भी वेश्याओं के प्रति अपेक्षित उदारता नहीं मिलती। आधुनिकता, प्रगतिशीलता या समाज-सुधार की शंक में यदि वे उनसे प्रेम या विवाह कर भी लेते हैं तो उनके अवचेतन में जमी शंका दूर नहीं होती। वे सामाजिक निन्दा, लोकापवाद से भी निर्विकार नहीं रह पाते। वे स्वयं भी एक वेश्या के उद्धारकर्त्ता होने के दंभ से मुक्त न होने के कारण उन्हें सही अर्थों में पत्नी का सम्मान नहीं दे पाते। जहाँ ऐसी स्त्रियों को संरक्षण देने वाले पुरुष में आत्मबल होता भी है, वहाँ समाज उन्हें नहीं जीने देता। 'बहिष्कार' कहानी में पत्नी गोविन्दी के मायके के कलंक की बात जानकर भी ज्ञानचन्द्र उसका परित्याग नहीं करता—"तुम आज भी उतनी ही पवित्र हो, जितनी उस समय थीं, जब देवताओं के समक्ष मैंने आजीवन पत्नीव्रत लिया था···अब तो मेरी देह और आत्मा का एक-एक परमाणु तुम्हारे अक्षय प्रेम में आलोकित हो रहा है। उपहास और निंदा की तो बात ही क्या है, दुर्दैव का कठोरतम आघात भी मेरे व्रत को भंग नहीं कर सकता। अगर डूबेंगे तो साथ-साथ डूबेंगे ; तरेंगे तो साथ-साथ तरेंगे। मेरे जीवन का मुख्य कर्त्तव्य तुम्हारे

1. प्रेमचन्द : मानसरोवर, भाग 4, पृष्ठ 44
2. प्रेमचन्द : कहानी-शिल्प, पृष्ठ 285-286

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रतिं है। संसार इसके पीछे—बहुत पीछे है।''[1] उसकी इस दृढ़ता का परिणाम होता है सामाजिक बहिष्कार, निर्धनता और पुत्र की मृत्यु, जिससे क्षुब्ध होकर वह आत्मघात करता है। यद्यपि लेखक ने उसका त्रासद अन्त दिखाया है किन्तु संकेत कर दिया है कि यदि ज्ञानचन्द्र जैसे अनेक व्यक्ति हो जाएँ तो निश्चय ही यह समस्या एक सीमा तक सुलझाई जा सकती है।

(ख) पुरुषों के अत्याचार के कारण पतित होनेवाली—पुरुषों की संदिग्ध दृष्टि, पारिवारिक कलह, गृह-निष्कासन तथा स्वयं नारी की चारित्रिक दुर्बलता भी उसे इस नारकीय जीवन को अपनाने के लिए बाध्य कर देती है। एक बार चाहे-अनचाहे इस मार्ग पर चल पड़ने के पश्चात् उसका इसमें से निकल पाना असंभव हो जाता है।

पुरुष अपनी कामेच्छा की तृप्ति के लिए जिस नारी के समस्त मान को सहर्ष स्वीकार करता है, अपनी प्रणय-याचना के अस्वीकार किए जाने पर आत्मघात की धमकी देता है, वही उसकी छोटी-सी भूल पर उसे अत्यंत निर्ममतापूर्वक निष्कासित करने में भी संकुचित नहीं होता। 'निर्वासन' कहानी की मर्यादा को पति की यही निष्ठुरता गर्हित जीवन की ओर ढकेल देती है। मेले में खो जाने को यदि उसकी भूल मानें तो पति भी उत्तरदायित्वहीनता के दोष से नहीं बच सकता। खो जाने के पश्चात् उसका छद्मवेशी दलालों के हाथ में पड़ना उसका नहीं, अपितु सामाजिक अव्यवस्था और उसमें व्याप्त भ्रष्टाचार का दुष्परिणाम है। इसके विपरीत मर्यादा की तत्पर बुद्धि, धैर्य और साहस प्रशंसनीय है, जिससे वह उनसे बचकर पुनः पति के पास पहुँचती है। उसे प्रशंसा के स्थान पर मिलता है लांछन, तिरस्कार और परित्याग। परशुराम कहता है—''जिस स्त्री पर दूसरी निगाहें पड़ चुकीं, जो एक सप्ताह तक न जाने कहाँ और किस दशा में रही, उसे अंगीकार करना मेरे लिए असंभव है।…तुम्हारा किसी अन्य पुरुष के साथ क्षण-भर भी एकान्त में रहना तुम्हारे पातिव्रत को नष्ट करने के लिए बहुत है। यह विचित्र बन्धन है, रहे तो जन्म-जन्मान्तर तक रहे, टूटे तो क्षण-भर में टूट जाय।''[2] वह इसे ईश्वरी अन्याय और स्वयं को दोषमुक्त मान अपना अन्तिम निर्णय सुना एक तरफ हो जाता है। विवश मर्यादा को अपनी नियति स्वीकार करनी पड़ती है, ''चलो मन। अब इस घर में तुम्हारा निबाह नहीं है। चलो, जहाँ भाग्य ले जाए।''[3] यद्यपि उसका प्रतिवाद निर्बल और अस्वाभाविक है, तथापि उसकी यही दुर्बलता उसके चरित्र को स्वाभाविक बना उसकी पीड़ा को अधिक गहरा देती है।

---

1. मानसरोवर, भाग 5, पृष्ठ 89
2. मानसरोवर, भाग 3, पृष्ठ 49
3. वही, पृष्ठ 50

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

'लांछन' कहानी में देवी रानी की सौन्दर्य-प्रशंसा सुनने की लिप्सा का अनुचित लाभ उठा मुन्नू और रज़ा नामक गुण्डे उसके और उसके पति के बीच इतना मनोमालिन्य बढ़ा देते हैं कि अन्त में उसे घर से निकलना पड़ता है। मुंशी श्यामकिशोर भी अपनी शंकालु वृत्ति, क्रोधी और असंयमी स्वभाव के कारण उसे सन्मार्ग पर नहीं ला पाते। अंततः—"चिड़िया एक बार पकड़ जाने पर भी फड़फड़ाई, किन्तु पैरों में लासा होने के कारण उड़ न सकी, और शिकारी ने उसे अपनी झोली में रख लिया।"[1] निश्चय ही उसे पुनः उन्मुक्त आकाश में विचरण करना और चहचहाना नसीब नहीं हुआ होगा।

'नरक का मार्ग' की कथा-नायिका एक धनी वृद्ध की पत्नी है जो अपनी पुंसत्वहीनता से अवगत होने के कारण सुन्दरी युवा पत्नी को हमेशा शंका की दृष्टि से देखता है। उसे अपने माता-पिता तथा सम्बन्धियों के प्रति रोष है जिन्होंने घर सँभालने, गृहस्थी का बोझ उठाने के लिए उसे एक वृद्ध व्यक्ति के साथ बाँध दिया। वह ऐसे विवाह को कारावास समझने लगती है। अतः कैद करनेवाले पुरुष की मृत्यु पर मुक्ति की साँस लेती है। वह स्वयं को विधवा भी नहीं समझती अतः लोकापवाद की चिन्ता न कर बनाव-शृंगार करती है। वह उन्मादावस्था में सच्चे प्रेम की खोज में घर छोड़कर निकल पड़ती है तथा एक कुटिनी बुढ़िया के बहकावे में फँस वेश्यालय पहुँच जाती है। "वह बुढ़िया, जिसे मैं आकाश की देवी समझती थी, नरक की डाइन निकली। मेरा सर्वनाश हो गया। मैं अमृत खोजती थी, विष मिला। निर्मल स्वच्छ प्रेम की प्यासी थी, गन्दे विषाक्त नाले में गिर पड़ी।···जीवन-पथ में एक बार उलटी राह चलकर फिर सीधे मार्ग पर आना कठिन है।"[2] उसकी उक्ति—"स्त्री सब कुछ सह सकती है, दारुण से दारुण दुःख, बड़े-से-बड़ा संकट, अगर नहीं सह सकती तो अपने यौवनकाल की उमंगों का कुचला जाना।"[3]—नारी जीवन की एक कटु विडम्बना की ओर इंगित करती है।

'बहिष्कार' कहानी में सोमदत्त द्वारा बहिष्कृत कालिन्दी ज्ञानचन्द्र द्वारा संरक्षण दिए जाने के कारण बचती है, अन्यथा उसकी और 'नरक का मार्ग' की कथा-नायिका की नियति एक-सी थी। लेखक ने परित्याग और गृहत्याग दोनों को अनुचित माना है। उसके अनुसार स्त्री में अगर धैर्य और सहनशक्ति हो तो वह इस अथाह सागर को भी बिना डूबे पार कर सकती है। अर्थाभाव भी पुरुष का संरक्षण न मिलने से ही होता है। यद्यपि कुछ स्त्रियाँ यथा 'दो कब्रें' की गुलनार वेश्यावृत्ति अपनाती हैं, तथापि ऐसी

---

1. मानसरोवर, भाग 5, पृष्ठ 124
2. वही, भाग 3, पृष्ठ 30
3. वही, पृष्ठ 30

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

स्त्रियों की संख्या अत्यल्प है। 'वेश्या' की माधुरी कहती है—"नारी अपना बस रहते हुए कभी पैसों के लिए अपने को समर्पित नहीं करती। यदि वह ऐसा कर रही है तो समझ लो कि उसके लिए और कोई आश्रय, और कोई आधार, नहीं है।"[1] यदि पुरुष चाहे तो उसका उद्धार कर सकता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रेमचन्द ने कुछ अविवाहिताओं (मिस पद्मा) और विधवाओं (आनन्दीबाई, मिस जोशी) को भी वेश्याओं और रखैलों की भाँति जीवन व्यतीत करते चित्रित किया है किन्तु उन्होंने उनका त्रासद अन्त दिखाकर अन्त में यही सिद्ध किया है कि वे विचार, भाव या बुद्धि से शून्य नहीं हैं। माया और तृष्णा के कारण उनकी सदवृत्तियों और आत्मिक पवित्रता कुछ समय के लिए निर्बल और निश्चेष्ट भले हो जाये, किन्तु अन्ततः वे उसके लिए पछताती ही हैं। लेखक शिक्षा, स्वावलम्बन, पुरुष और समाज की मनोवृत्ति में परिवर्तन द्वारा उनके उद्धार के प्रति आस्थावान है।

2. प्रगतिशीला कर्मस्विनी रूप

प्रेमचन्द-युग के पूर्वार्द्ध तक भारतीय नारी में अपेक्षित जागृति का अभाव था। राजनीति, प्रशासन आदि के क्षेत्रों से वह अपरिचित थी। पाश्चात्य शिक्षा-प्राप्त कुछ सनाढ्य परिवारों की महिलाओं में अवश्य आधुनिक चेतना मिलती थी। बापू के आह्वान पर पहली बार नारियाँ घर और पर्दे की परिधि त्याग बाहर आईं और उन्होंने राजनीतिक कार्यों में पुरुषों के समकक्ष सहयोग दिया। धरना, पिकेटिंग जन-सेवा के कार्यों में वे पुरुषों से अधिक सक्रिय रहीं। उन्होंने स्वयंसेविकाओं के रूप में पुलिस के डण्डे खाए। वे जेल भी गईं। प्रेमचन्द की पत्नी शिवरानी देवी भी कांग्रेस की गतिविधियों में सक्रिय भाग लेने के कारण जेल गई थीं। प्रेमचन्द नारी के इस प्रगतिशील रूप के प्रशंसक थे। उन्होंने अपनी प्रौढ़ काल की कहानियों में नारी के इस रूप का सशक्त चित्रण निम्नलिखित दृष्टियों से किया है—राष्ट्रसेविका, प्रशासिका, शिक्षिका, चिकित्सिका, विधिवेत्ता।

(अ) राष्ट्रसेविका रूप

राष्ट्रभक्ति और देशसेवा के लिए लगन, धैर्य, सहनशक्ति और कठिनतम यातनाओं में भी अटल बने रहने की दृढ़ता जैसे गुण अपेक्षित होते हैं। प्रेमचन्द ने नारी के प्रभावक व्यक्तित्व में इन सभी का संयुक्त रूप देखा। प्रेमचन्द कलम के सिपाही थे। अपने दुर्बल रोगी शरीर के कारण वे स्वतंत्रता आन्दोलन में शारीरिक सक्रियता नहीं दिखा सकते थे, न जेल ही जा सकते थे। उनकी कहानियों में प्रस्तुत नारी-पात्र भी

1. मानसरोवर, भाग 2, पृष्ठ 49

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अपनी-अपनी सामर्थ्य, शक्ति और रुचि के अनुसार इस महायज्ञ में आहुति देते हैं। कुछ ने सक्रिय सहयोग दिया तो कुछ पुरुषों की प्रेरणा की शक्ति बनीं। कुछ ने त्याग-बलिदान का अनुकरणीय निदर्शन प्रस्तुत किया तो अन्य में राष्ट्रीय भावना अपने चरमोत्कर्ष पर थी। इनमें से किसी के भी योग का समग्र आकलन संभव नहीं।

(क) सक्रिय सहयोगिनी—स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय सहयोग देनेवाली नारियों में 'जेल' कहानी की क्षमा देवी और मृदुला उल्लेखनीय हैं। जलियाँवाला बाग़ के हत्याकाण्ड में पति व पुत्र के शहीद होने पर क्षमा भी अपने को राष्ट्र को समर्पित करने के लिए प्रतिबद्ध होती है। वह "जिन कारणों ने उसके बसे हुए घर को उजाड़ दिया, उसकी गोद सूनी कर दी, उन कारणों का अन्त करने, उनको मिटाने में जी-जान से लगी थी।...औरों के लिए जाति-सेवा सभ्यता का एक संस्कार हो, या यशोपार्जन का एक साधन, क्षमा के लिए तो यह तपस्या थी, और वह नारीत्व की सारी शक्ति और श्रद्धा के साथ उसकी साधना में लगी हुई थी।"[1] उसमें एक राजनीतिक कैदी-सी दृढ़ता और आत्माभिमान था। एक उद्दंड व्याख्यान देने के अपराध में जेल काटती क्षमा अन्य महिला कैदियों की भाँति परस्पर विग्रह, परनिन्दा, परिवार के प्रति व्यग्रता आदि में न लगकर देश-चर्चा में ही आनन्द का अनुभव करती थी। इसी कहानी में मृदुला पहली बार जेल आने पर परिवार व पति-पुत्र की याद में अपनी मुक्ति के लिए सत्यासत्य का अवलम्ब लेती है और अन्य महिला कैदियों के उपहास का पात्र बनती है, किन्तु तीन माह पश्चात् कृषक आन्दोलन में पति, पुत्र और सास तीनों के पुलिस की गोली से मारे जाने पर उसका परिवार-मोह समाप्त हो जाता है। वह संस्कार-स्थल से घर न लौट कर सीधे महिलाश्रम चली जाती है और सरकार विरोधी जुलूस निकालने के अपराध में गिरफ्तार कर जेल भेज दी जाती है। किन्तु, अब उसका दृष्टिकोण परिवर्तित हो चुका है। वह कहती है—"...मुझ में अब लेश-मात्र भी दुर्बलता नहीं। मैं चिंताओं से मुक्त हूँ। मैजिस्ट्रेट जो कठोर-से-कठोर दंड प्रदान करे, उसका स्वागत करूँगी।...पुलिस के किसी आक्षेप या असत्य आरोपण का प्रतिवाद न करूँगी क्योंकि मैं जानती हूँ, मैं जेल के बाहर रहकर जो कुछ कर सकती हूँ, जेल के अन्दर रहकर उससे कहीं ज्यादा कर सकती हूँ। जेलों के बाहर भूलों की सम्भावना है, बहकने का भय है, समझौते का प्रलोभन है, स्पर्धा की चिन्ता है, जेल सम्मान और भक्ति की एक रेखा है, जिसके भीतर शैतान कदम नहीं रख सकता।"[2] और, इस प्रकार जेल की सीमा-रेखा में सुरक्षित मृदुला भारत माता की जय-ध्वनि से जेल को गुंजरित करती रही। स्नेहमयी सखी, त्यागमयी राष्ट्रसेविका, पूर्ण समर्पिता पत्नी और

---

1. मानसरोवर, भाग 7, पृष्ठ 9-10
2. वही, पृष्ठ 15-16

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ममतामयी माँ मृदुला की कहानी अत्याचारी आंग्ल सरकार के अनाचार की कहानी है। लेखक ने स्पष्ट कर दिया है कि सत्याधारित जन-भावना गोलियों की बौछार से भी नहीं डरती। उसमें अमानवीय अत्याचारों से न डिगने की दृढ़ता और अभिमान है, जिससे वह रक्तपात और स्वार्थ पर आधारित निरंकुशता का उन्मूलन करने में समर्थ है। प्रेमचन्द की ये दोनों ही नारियाँ राष्ट्र के लिए घोर कष्ट सहकर भी पथ से विचलित नहीं होतीं। वे राष्ट्रीय भावों से स्वयं तो अभिभूत हैं ही, अपने उग्र विचारों से दूसरों को भी प्रेरित-प्रभावित करती हैं। सरकारी दमन-चक्र की तीव्रता के साथ ही उनकी उग्रता भी प्रचंड से प्रचंडतर होती जाती है। लेखक ने उनके व्यक्तित्व को अखंडित अविभाज्य बनाए रखने के लिए उन्हें पारिवारिक मोह से एक झटके से अलग कर दिया है।

'शराब की दुकान' की चरित-नायिका अपने पति के समान त्यागी, साहसी, दृढ़ और कर्त्तव्यपरायण है। वह गांधीजी द्वारा संचालित मद्य-निषेध आन्दोलन में शराब की दुकान पर धरना देती है। उसे अपने आत्म-बल और धैर्य पर विश्वास है, इसलिए जयराम के हिंसा-वृत्ति अपनाने के विरोध में शराबियों को बचाते हुए स्वयं घायल होती है। उसका अप्रतिम त्याग देख लोग शराब छोड़ने का संकल्प करते हैं तथा दुकानदार भी निर्णय लेता है—''कल से मेरा इस्तीफा है। अब विदेशी कपड़े का रोज़गार करूँगा, जिसमें ज़रा जस भी है और उपकार भी।''[1]

केवल युवतियाँ ही इस क्षेत्र में सक्रिय नहीं रहतीं, अपितु 'समर-यात्रा' की वृद्धा विधवा नौहरी भी गांधीजी और उनके सत्याग्रह आन्दोलन में पूरी आस्था रखती है। पति के जीवन-काल में बीस कोस पैदल चलकर गांधीजी के दर्शनार्थ जाने और अपने द्वार पर सत्याग्रहियों का स्वागत करनेवाली नौहरी का प्रेम पति की मृत्यु के पश्चात भी बना रहता है। अर्थाभाव के कारण वह स्वयं स्वयंसेवकों का आतिथ्य करने में असमर्थ रहती है। उसका मनस्वी हृदय आहत हो चीत्कार उठता है—''हाय ! अगर भगवान ने उसे इतना अपंग न कर दिया होता, तो आज झोंपड़े को लीपती, द्वार पर बाजे बजवाती, कढ़ाव चढ़ा देती, पूड़ियाँ बनवाती और जब वह लोग खा चुकते, तो अंजुली-भर रुपये उनकी भेंट कर देती।''[2] कोदई के पुरानी हाँडी माँगते ही उसका क्षोभ फुफकार उठता है—''जले पर नमक न छिड़को, देवर जी। भगवान ने दिया होता, तो तुम्हें कहना न पड़ता। इसी द्वार पर एक दिन साधु-संत, जोगी-जती, हाकिम-सूबा सभी आते थे, मगर सब दिन बराबर नहीं जाते।''[3] पुलिस और दरोगा द्वारा लाठीचार्ज और दुर्व्यवहार करते देख वह उन पर बरस पड़ती है—''यदि ये मर्द होते तो गुलाम ही क्यों होते ?

---

1. मानसरोवर, भाग 7, पृष्ठ 43
2. वही, पृष्ठ 58
3. वही, पृष्ठ 58

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भला अंग्रेज इस तरह बेदर्दी करें तो एक बात है। उनका राज है। तुम तो उनके चाकर हो। तुम्हें तो राज न मिलेगा ?...इन्हें कोई तलब देता जाए, दूसरों की गरदन काटने में संकोच नहीं।"[1] वृद्धा होते हुए भी वह सत्याग्रहियों में सम्मिलित होती है तथा जेल जाने की इच्छा व्यक्त करती है। "मैं तो बूढ़ी औरत हूँ, लेकिन कुछ और न कर सकूँगी तो जहाँ ये लोग सोयेंगे, वहाँ झाड़ू तो लगा दूँगी, इन्हें पंखा तो झलूँगी।"[2] उसके आह्वान पर ग्रामीण युवक इस धरम की लड़ाई में हँसते-हँसते मरने के लिए उतावले हो उठे। नोहरी के माध्यम से प्रेमचन्द ने गाँवों में व्याप्त राजनीतिक चेतना और गांधीजी के प्रति आस्था को प्रकाशित किया है।

(ख) राष्ट्रभक्ति की प्रेरिकाएँ—अंग्रेजी शासन-काल में उच्च पदासीन धन-लोलुप भारतीय अपने ही भाइयों पर अत्याचार करने में संकुचित नहीं होते थे। प्रेमचन्द ने माँ, पत्नी के रूप में ऐसी नारियों के चित्र अंकित किए जो उन्हें भारतीयता और स्वदेशाभिमान से भर सकें। सन्तान में राष्ट्रीय भावों का उन्मेष कराने में माँ की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। 'माँ' कहानी की नायिका करुणा देश-प्रेम के सम्मुख वात्सल्य के स्वर्गीय सुख को तिलांजलि देनेवाली अप्रतिम त्यागमयी नारी है। पति आदित्य के राजनीतिक अपराध में जेल जाने, रुग्ण हो लौटने तथा अन्त में मृत्यु को प्राप्त होने पर भी वह विचलित नहीं होती। उसे अपने देशभक्त पति के जीवन पर गर्व है।[3] वह अपने पुत्र को भी स्वयंसेवक बनाना चाहती है किन्तु उदारता, त्याग, विनय के स्थान पर उसमें धृष्टता, अविनय, कुतर्क को विकसित होता देख श्रीहीन हो जाती है। शिक्षित प्रकाश जब उसकी इच्छा के विरुद्ध मैजिस्ट्रेट बनने का निर्णय लेता है तो वह उसकी महत्त्वाकांक्षाओं की हत्या न कर उसे ऋण लेकर विदेश भेज देती है, किन्तु प्रतिगामी पुत्र से विरक्त हो पति के स्मृति-चिह्नों को जला स्वयं भी चिरनिद्रा में सो जाती है।

'होली का उपहार' की सुखदा विदेशी वस्त्रों की दुकान पर धरना देती है। वह अमरकान्त को विदेशी साड़ी के स्थान पर स्वदेशी वस्त्र खरीदने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करती है। वस्तुत: अमरकांत व सुखदा पति-पत्नी थे किन्तु वे एक-दूसरे से परिचित न थे। अन्त में उसके उदात्त विचारों से प्रभावित अमरकांत विदेशी साड़ी जला स्वयंसेवकों में भर्ती हो जेल जाते हैं।

---

1. मानसरोवर, भाग 7, पृष्ठ 63-64
2. वही, पृष्ठ 66
3. "तुम्हारा जीवन देवताओं का-सा जीवन था, नि:स्वार्थ, निर्लिप्त और आदर्श।...अगर तुम माया-मोह में फँसे होते तो कदाचित् मेरे मन को अधिक संतोष होता, लेकिन मेरी आत्मा को वह गर्व और उल्लास न होता, जो इस समय हो रहा है।"—मानसरोवर, भाग 1, पृष्ठ 42-43

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

'तावान' कहानी की अम्बा भी अपने पति छकौड़ी को विदेशी वस्त्रों का विक्रय करने से रोकती है। मुहर तोड़कर बेंचे गए वस्त्रों से प्राप्त रुपयों से वह अपनी चिकित्सा कराने के लिए भी तैयार नहीं होती। कांग्रेस द्वारा लगाए गए तावान की माफी और जीविकानिर्वाह हेतु पच्चीस रुपये की नौकरी न मिलने पर वह घर बेचकर तावान भरवाती है—"और कुछ नहीं है, घर तो है। इसे रेहन रख दो और अब विलायती कपड़े भूल कर भी न बेचना।"बाल-बच्चे भूखों मरते हैं, मरने दो। देश में करोड़ों आदमी ऐसे हैं, जिनकी दशा हमारी दशा से भी खराब है। हम न रहेंगे, देश तो सुखी होगा।"[1] उसकी दृढ़ता छकौड़ी के हृदय-परिवर्तन का कारण बनती है।

'जुलूस' कहानी की मिट्ठनबाई अपने पदलोभी पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट पति द्वारा सत्याग्रहियों के जुलूस पर जुल्म ढाते देख क्षोभ से भर उठती है। वे उनकी पदोन्नति से भी प्रसन्न नहीं होतीं। "बेगुनाहों के खून से हाथ रँगकर तरक्की पायी, तो क्या पायी। यह तुम्हारी कारगुज़ारी का इनाम नहीं, तुम्हारे देशद्रोह की कीमत है। तुम्हारी कारगुज़ारी का इनाम तो तब मिलेगा, जब तुम किसी खूनी को खोज निकालोगे। किसी डूबते हुए आदमी को बचा लोगे।"[2] तीन दिन पश्चात् एक शहीद की मृत्यु के मातम में निकलनेवाले जुलूस में अंग्रेजों और उनके पिट्ठुओं की निन्दा सुन और उस शहीद के प्रति लोगों का सम्मान-भाव देख उसके पति अपराध-बोध से भर उठते हैं—"सरकश वे कहलाते हैं, जो डाके मारते हैं, चोरी करते हैं, खून करते हैं, उन्हें सरकश नहीं कहते, जो देश की भलाई के लिए अपनी जान हथेली पर लिए फिरते हों। हमारी बदनसीबी है कि जिनकी मदद करनी चाहिए, उनका विरोध कर रहे हैं। यह घमंड करने और खुश होने की बात नहीं है, शर्म करने और रोने की बात है।"[3] वे शहीद इब्राहिम अली की विधवा के पास अपना अपराध क्षमा कराने जाते हैं।

मिट्ठनबाई के समान ही गोदावरी (पत्नी से पति) भी जनहित के लिए अपने सरकारी अफसर पति का विरोध करती है। यद्यपि वह पति के सम्मुख विदेशी वस्त्रों को जलाने का साहस नहीं जुटा पाती, तथापि स्वयं खादी की मोटी साड़ी पहनने लगती है, सत्याग्रहियों की मदद के लिए अंधे भिखारी के लड़के का सिक्का भारी दाम पर खरीदती है, जिससे उसके पति की नौकरी चली जाती है। वह स्वयं आजीविका-निर्वाह का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले पति को देश-सेवा के प्रति उन्मुख करती है और इस प्रकार पत्नी से पति बन कर दिखा देती है। गोदावरी के चिन्तन में लेखक द्वारा अंग्रेजों के आधीन सेवारत भारतीयों के कर्त्तव्यों का निर्धारण करने का प्रयास स्पष्ट है।

---

1. मानसरोवर, भाग 1, पृष्ठ 247
2. मानसरोवर, भाग 7, पृष्ठ 48'
3. वही, पृष्ठ 48

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(ग) त्यागी-बलिदानी—त्याग अथवा बलिदान प्रेमचन्द की नारी की महती विशेषता है। उनकी राष्ट्रभक्त नारियाँ राष्ट्रहित के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने में भी नहीं हिचकतीं। रानी सारन्धा का सम्पूर्ण जीवन जाति और देश की सेवा में व्यतीत होता है। युद्ध भूमि से पलायन करनेवाले भाई को फटकार कर वह उसे पुनः कर्त्तव्यारूढ़ कराती है। ओरछा के शक्तिशाली नरेश चम्पतराय की यह स्वाभिमानी पत्नी पति के पराधीनता स्वीकार कर कालपी की जागीरदारी सँभालने पर उदास हो जाती है—"ओरछे में मैं एक राजा की रानी थी। यहाँ मैं एक जागीरदार की चेरी हूँ। ओरछे में मैं वह थी जो अवध में कौशल्या थीं, यहाँ मैं बादशाह के एक सेवक की स्त्री हूँ।···रानी से चेरी होकर भी प्रसन्नचित्त होना मेरे वश में नहीं है। आपने यह पद और यह विलास की सामग्रियाँ बड़े महँगे दामों मोल ली हैं।"[1] उसकी प्रेरणा से यही चम्पतराय पुनः ओरछा प्राप्त करते हैं। वह ओरछा दुर्ग घिर जाने पर अपने प्राणप्रिय छत्रसाल को स्त्री-बच्चों के लिए रक्षा-पत्र लेने मुग़ल सेनापति के पास भेजती है। कागज़ के पुर्जे के लिए इतना बड़ा बलिदान देनेवाली वह अकेली महिला थी। रुग्ण पति को लेकर किला छोड़ जाते समय परतन्त्र होने की नौबत आते ही वह पति की छाती में कटार मार स्वयं भी आत्मघात कर लेती है। बहिन, माँ और पत्नी तीनों ही रूपों में उसका त्याग और बलिदान अप्रतिम है।

'धिक्कार' कहानी में ईरानी मन्दिर की पुजारिन अपने देशद्रोही पुत्र के कारण देश को पराजित होता देख कर लज्जित होती है। वह जनता को मन्दिर में छिपे पुत्र के झूठे बहकावों में न आकर उसे दीवार में चिन देने की प्रेरणा देती है और उसका पहला पत्थर स्वयं रखती है। उसका राष्ट्र-प्रेम रक्त सम्बन्ध से भी ऊपर सर्वोपरि है। 'आहुति' कहानी की नायिका रूपमणि अपने देशभक्त पति विश्वम्भर के साथ कृषक आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेती है। वह उसकी मृत्यु के पश्चात् समस्त भोग-विलास त्याग उसके द्वारा जलाए सेवा के दीपक को सदैव प्रज्ज्वलित रखने का संकल्प करती है। 'अनुभव' कहानी में बाबू ज्ञानचन्द्र की पत्नी की देश-सेवा की पद्धति सबसे भिन्न है। वे राष्ट्र-भक्त वीरों, स्वयंसेवकों और शहीदों के परिवार की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझती हैं। इस कर्त्तव्य के सम्मुख उन्हें पति की नौकरी चले जाने का भी भय नहीं होता। इसी कहानी में नायक की पत्नी उनका संरक्षण पा आश्वस्त ही नहीं होती, बल्कि समस्त नारियोचित दुर्बलताओं को त्याग स्वयं भी विधिवत् सत्याग्रह में दीक्षित हो जाती है।

(घ) राष्ट्र-भावना के उत्कर्ष से युक्त—राष्ट्र-भक्ति प्रेमचन्द के साहित्य का मूल स्वर है। भावना की साकार प्रतिमा नारी में उन्होंने देशभक्तों के अनुरूप दृढ़ता,

---

1. मानसरोवर, भाग 6, पृष्ठ 42

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

धैर्य, लगन, साहस और राष्ट्रीय-भावना का पूर्ण उन्मेष दिखाया है। 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' की राष्ट्र प्रेमिका नायिका दिलफरेब अपने प्रेमी को भी देशहित के लिए प्राणोत्सर्ग की क्षमता और साहस से युक्त देखने की आकांक्षी है, अतः वह अपने प्रेम की शर्त 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' की उपलब्धि रखती है। दिलफिगार द्वारा लाई गई वस्तुओं में से वह एक भारतीय सिपाही के रक्त की उस आखिरी बूँद को सर्वाधिक अमूल्य ठहराती है जो उसने युद्धक्षेत्र में गिराई थी। इस प्रकार वह स्पष्ट कर देती है कि उसकी दृष्टि में राष्ट्र-रक्षा एक नागरिक का सर्वोपरि कर्त्तव्य है। 'कुत्सा' कहानी की पद्मा, उर्मिला, श्यामा मुख्य पात्राओं के रूप में नियोजित न होने पर भी भ्रष्ट कार्यकर्त्ताओं की पोल खोलने का माध्यम बनी हैं। कांग्रेस तथा उसकी गतिविधियों के प्रति लेखक की आस्था स्पष्ट अभिव्यक्त हुई है। उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ अधिक निःस्वार्थ भाव से देश-सेवा कर सकती हैं, क्योंकि उनमें प्राणीमात्र को समेट लेनेवाला विशाल हृदय होता है।

(आ) प्रशासिका रूप

सौन्दर्य, कोमलता, विनय, करुणा और उदारता की स्वामिनी नारी बौद्धिक और वैचारिक क्षमता से शून्य नहीं होतीं। अवसर और सुविधाएँ दिए जाने पर वे प्रशासन के कार्य में भी पुरुषों के पीछे नहीं रहतीं। ये प्रशासिकाएँ भी दो प्रकार की हैं—गृह प्रशासिकाएँ, राजकीय प्रशासिकाएँ।

(क) गृह प्रशासिकाएँ—प्रेमचन्द की कहानियों में रामप्यारी (स्वामिनी), रमादेवी (चमत्कार), मालकिन (दूध का दाम), भानुकुँवरि (ईश्वरी न्याय) आदर्श गृह-प्रशासिकाएँ हैं जो अपने सुयोग्य निर्देशन से अपने परिवार में सुख-शान्ति और समृद्धि लाती हैं।

(ख) राजकीय प्रशासिकाएँ— 'जुगनू' कहानी की नायिका चंद्रकुंवरि 'पंजाब सिंह' रणजीत सिंह की विधवा है। राजा की मृत्यु के पश्चात् वे अंग्रेजों के कारागार से मुक्त हो किसी प्रकार अयोध्या पहुँचती हैं। उनकी तेजस्विता, वीरता और साहस से चमत्कृत नेपाल का छद्मवेशी प्रधान मन्त्री उन्हें नेपाल जाने की सम्मति देता है। नेपाल रणजीत का विरोधी था, अतः रानी के संकोच पर वह उन्हें आश्वस्त करता है तथा वहाँ पहुँचने पर अपने असली रूप में प्रस्तुत हो उनका स्वागत करता है। वह उनके आवास और जीविका का भी समुचित प्रबन्ध करता है।

'दिल की रानी' में उम्मतुल हबीब पुरुष वेश में रहते हुए अपनी वीरता, नीतिमत्ता, न्यायप्रियता, निर्णय क्षमता तथा कुशल प्रशासन में तैमूर को जीत कर न केवल उसकी बादशाहत की, बल्कि दिल की रानी बन जाती है।

'लैला' की लैला ईरान के बादशाह को जनहित के कार्यों के लिए प्रेरित कर प्रजा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

का दिल जीत लेती है किन्तु विद्रोह होने पर निर्विकार और अविचल रहते हुए बादशाहत छोड़ अपने 'डफ' सहित मार्ग पर निकल जाती है।

(इ) शिक्षिका रूप

प्रेमचन्द नारी का कार्य क्षेत्र घर तक सीमित मानते थे। डॉ. भरतसिंह के अनुसार, ''प्रेमचन्द नारी की शारीरिक रचना तथा अन्य अनेक गार्हस्थिक बन्धनों के कारण उसका कार्यक्षेत्र घर ही मानते हैं। यह पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह उसे घर में ही पूर्णरूपेण स्वतंत्र तथा आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न बनाये। स्त्री की स्वतंत्रता और आर्थिक दृष्टि से पूर्ण आत्मनिर्भरता के लिए वे वैदिक नारी का अनुसरण करने का संकेत देते हैं। अत: उन्होंने व्यवसाय या किसी प्रकार की जीविका करनेवाली स्त्रियों की दुर्दशा ही चित्रित की है।''[1] नारी के लिए अध्ययन और अध्यापन का कार्य सर्वाधिक निरापद और सम्माननीय होता है किन्तु आधुनिक दूषित शिक्षा, चरित्रहीन प्राध्यापकों तथा कर्त्तव्यच्युत अभिभावकों के कारण अब यह भी पूर्ण सुरक्षित और विश्वसनीय नहीं रह गया है। 'लांछन' कहानी में मिस खुर्शेद तथा मिसेज टंडन क्रमश: इन्दुमती महिला पाठशाला की हैड-मिस्ट्रेस तथा महिला आश्रम की प्रधान हैं। मिसेज टंडन कायर, परनिन्दा में रस लेनेवाली, स्वार्थी और अवसरवादी महिला हैं। उनकी सहयोगी मिसेज बागड़ा, मिसेज पांडे, मिसेज मेटरा भी उन्हीं की प्रवृत्ति की हैं। इनके विरुद्ध मिस खुर्शेद एक अनुभवी, विवेकी, साहसी महिला हैं जो विद्यालय में व्याप्त कुत्सा के उन्मूलन के लिए नियोजित हैं। लेखक ने उनके माध्यम से सिद्ध किया है कि शिक्षण संस्थान अपनी स्वाभाविक गरिमा, उच्चादर्शों को खो केवल परनिंदा और भ्रष्टाचार के केन्द्र बनते जा रहे हैं। 'स्मृति का पुजारी' की मिस इन्दिरा रूपवती, दयावान, सिलाई और पाक-विज्ञान में दक्ष महिला पाठशाला की हेडमिस्ट्रेस हैं। विधुर होरीलाल के प्रति उनका झुकाव प्रारंभ में दया भाव से प्रेरित जान पड़ता है किन्तु बाद में उनके द्वारा किया गया विवाह-प्रस्ताव उनकी छवि को धूमिल कर देता है। 'त्यागी का प्रेम' की आनन्दी बाई कर्मठ, परिश्रमी महिला होने पर भी व्यक्तिगत जीवन में कोई अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत नहीं करतीं।

(ई) चिकित्सिका रूप

प्रेमचन्द-युग में चिकित्सा के क्षेत्र में पुरुषों का ही आधिपत्य था, अत: उनकी कहानियों में केवल 'लांछन' कहानी की लीला ही चिकित्सक हैं। वे भी मुख्य पात्रा नहीं हैं, बल्कि जुगनूबाई की पोल के लिए थोड़ी देर के लिए मिस्टर विलियम किंग के

---

1. प्रेमचन्द के नारी पात्र, पृष्ठ 257

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रूप में आती हैं। इसी प्रकार 'दो सखियाँ' में मिस रिंग भी महिला-चिकित्सक हैं जो केवल अतिथि रूप में उल्लिखित हैं। इनके स्वरूप और चरित्र-विकास का कोई प्रयास लेखक ने नहीं किया है।

(उ) विधिवेत्ता रूप

प्रेमचन्द को नारी की विभिन्न व्यवसायों के प्रति रुचि पसन्द नहीं थी। 'मिस पद्मा' की मिस पद्मा एक वकील हैं किन्तु उनका जीवन भ्रष्ट और निन्दनीय है। उन्हें "विलास से घृणा नहीं, घृणा थी पराधीनता से, विवाह को जीवन का व्यवसाय बनाने से।...भोग में उसे कोई नैतिक बाधा न थी। इसे वह केवल देह की भूख समझती थी। इस भूख को किसी साफ-सुथरी दुकान से भी शान्त किया जा सकता है और पद्मा को साफ-सुथरी दुकान की हमेशा तलाश रहती थी।"[1]

निष्कर्ष

शोषित नारियाँ प्रेमचन्द की हार्दिक सहानुभूति का पात्र रही हैं। उन्होंने विधवाओं और वेश्याओं के अभिशप्त जीवन में प्रवेश कर उनकी समस्याओं के कारणों की शोध की तथा उनके निदान भी सुझाए। उन्होंने उच्च, मध्य, निम्न वर्गों की बाल, युवती, प्रौढ़ तथा वृद्ध विधवाओं के जीवन का विवेचन किया तथा इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मध्यवर्गीय विधवा को जटिल सामाजिक नैतिक प्रतिबन्धों, सती-साध्वी कहलाने के मोह तथा आर्थिक परावलम्बन के कारण सबसे अधिक कष्ट भोगना पड़ता है। उच्च वर्ग की नारी यदि सती न भी हो तो भी अर्थाभाव न होने से अपना जीवन अन्य कार्यों—पूजा-पाठ, समाज-सेवा, साहित्य का मनन आदि—में व्यतीत कर सकती है। निम्नवर्गीय नारी भी नैतिक बन्धनों के लचीलेपन तथा स्वतः स्वावलम्बी होने के कारण देवर से विवाह कर पुनः दाम्पत्य सुख प्राप्त कर लेती है। स्वेच्छा से वैधव्य स्वीकारने पर भी उसे पछतावा नहीं होता।

विधवा-समस्या के मूल कारणों में उन्होंने बालविवाह, अनमेल और वृद्ध-विवाह, समाज की दूषित व्यवस्था को मुख्य माना। बाल तथा युवती विधवाओं के सम्मुख दीर्घ जीवन होता है, जिसे बिना सहारे के काटना कठिन है। अतः उन्होंने योग्य वर मिलने पर उनका पुनर्विवाह ही उचित बताया। उन्होंने प्रौढ़ तथा वृद्ध विधवाओं को जीविकोपार्जन में समर्थ बनाने तथा आश्रमों की स्थापना किए जाने का सुझाव दिया। उन्होंने वैधव्य को अंगीकार करनेवाली, उसको आंशिक स्वीकृति देने वाली तथा उसका पूर्ण बहिष्कार करनेवाली विधवाओं के यथार्थ चित्र अंकित किए। प्रेमचन्द-

1. मानसरोवर, भाग 2, पृष्ठ 81

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

युग में वेश्याओं की समस्या अत्यंत विकट थी। लेखक ने इस समस्या के मूल में पुरुषों की संदिग्ध दृष्टि और नारी के प्रति अमानुषिक व्यवहार, पारिवारिक कलह, अर्थाभाव तथा स्त्रियों की लोलुपता और लिप्सा को मुख्य कारण बताया। उन्होंने पेशेवर वेश्याओं के साथ ही विवशता में वेश्यावृत्ति अपनानेवाली स्त्रियों का अंकन किया तथा इस समस्या को दूर करने के लिए शिक्षा, स्वावलम्बन और आश्रमों की स्थापना पर बल दिया। स्वेच्छा से उनका वरण करनेवाले पुरुष मिलने पर उन्होंने उनके पुनर्विवाह की भी पेशकश की। वेश्या-सन्तानों को सामाजिक तिरस्कार और उपेक्षा से बचाने और उनके अधिकार दिलाने के प्रति भी वे सतर्क रहे।

प्रगतिशील नारियों में उन्होंने राष्ट्रसेविकाओं, प्रशासिकाओं, शिक्षिकाओं, चिकित्सिकाओं और विधिवेत्ताओं के रूप में विभिन्न प्रकार की नारियों का अंकन किया है, किन्तु सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र-सेविकाओं को माना है। वे उच्छृंखल, परिवार के प्रति कर्त्तव्य-निर्वाह न करनेवाली, कामुक, विलासी और पुरुषों से प्रतिस्पर्धा करने वाली नारियों को हेय मानते थे। अतः उन्होंने उनको दुःखी और विफल चित्रित किया है। उनकी ग्रामीण नारियाँ दासी, घास बेचनेवाली, भाड़ झोंकनेवाली आदि भी हैं किन्तु वे कहानियों में अपने इस रूप में नहीं आई हैं। उनका सम्बन्ध जीविका से इतर किसी अन्य समस्या से रहा है, अतः उनका विवेचन इस प्रसंग में नहीं किया गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उपसंहार

प्रेमचन्द मानव-चरित्रों के चितेरे हैं। उनके उपन्यासों और कहानियों में सजी चित्र-वीथियों में विभिन्न वर्गों ; वयों और प्रवृत्तियों वाले स्त्री-पुरुषों, बच्चों के चित्र हैं जिनके हल्के-चटक रंग अपनी-अपनी तरह से दर्शक को मोहते हैं। उनके नारी-चित्र विशेष आकर्षक हैं। उनके सभी उपन्यासों में और कहानियों में नारी कहीं प्रमुख है, कहीं गौण तो कहीं समस्या को उभारने का माध्यम बनी है किन्तु है सर्वत्र विद्यमान। उनकी कुछ ही कहानियों को पुरुषप्रधान कहा जा सकता है।

प्रेमचन्द की नारी-भावना के विधायक एवं कारक तत्त्वों में उनका स्वयं का जीवनानुभव, विभिन्न साहित्यकारों और उनके साहित्य का प्रभाव तथा परिवेश और वातावरण का प्रभाव क्रियाशील रहा। माता के सहज स्नेह से वंचित होने तथा विमाता के कठोर नियन्त्रण में रहने की पीड़ा, अर्थाभाव, अनमेल विवाह, पारिवारिक विग्रह, पुनर्विवाह से प्राप्त सुख आदि उनकी कहानियों में विभिन्न नारियों का जीवन बनकर अभिव्यंजित हुए हैं। एक प्रकार से उनकी कहानियाँ ऐसे दर्पण बनी हैं जिनमें उन्होंने अपने ही जीवन को प्रतिबिम्बित किया है।

उर्दू, अंग्रेज़ी और बांग्ला के अनेक सुधी साहित्यकारों के अतिरिक्त उनके पूर्ववर्ती तथा समसामयिक हिन्दी-साहित्य ने भी उनकी नारी विषयक मान्यताओं के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। अध्ययन तो उन्होंने अनेक का किया, उनसे प्रेरित और प्रभावित भी हुए किन्तु अंधानुकरण किसी का भी नहीं किया। यदि उर्दू-साहित्यकारों के नारी के प्रति सम्मान-भाव के वे प्रशंसक थे तो इस्लाम में प्रचलित पर्दा-प्रथा, बहुविवाह, तलाक आदि का उन्होंने तीव्र विरोध भी किया। इसी प्रकार बांग्ला साहित्यकारों—शरत्, बंकिम, रवीन्द्र के नारी के प्रति दृष्टिकोण की सीमाओं को छोड़ते हुए उन्होंने अपना अलग और सर्वथा निजी दृष्टिकोण बनाया। उन्होंने नारी के प्रति भावनात्मक दृष्टि रखते हुए भी उसकी समस्याओं को यथार्थ, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक धरातल पर विवेचित किया तथा उनका निदान भी प्रस्तुत किया।

प्रेमचन्द नारी को विधाता की सबसे सुन्दर रचना मानते थे। वैदिककालीन भारतीय नारी का आदर्श उनकी मान्यताओं का अवलम्ब बना। उन्होंने प्रसाद की श्रद्धा की भाँति दया, माया, ममता, मधुरिमा और अगाध विश्वास युक्त समर्पण वाली ऐसी नारी की परिकल्पना की जो पीयूषस्रोत-सी बहकर पुरुष के जीवन को समतल और उर्वर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बनाती है। मध्ययुगीन शृंगारिकता तथा विलासिता के पंक में फँसी या अत्याधुनिक उच्छृंखल नारी उनका काम्य नहीं थी। वे उसे प्रगतिशील, सबल और समर्थ बनाकर भी भारतीय आदर्शों की लक्ष्मण रेखा में सीमित रखना चाहते हैं।

प्रेमचन्द प्रेम को नारी की महत् शक्ति मानते थे। इसी शक्ति द्वारा वह पुरुषों को उनकी नैसर्गिक पाशविकता, बर्बरता और कठोरता से मुक्त कर पूर्णता प्रदान करती है। नारी का निष्काम प्रतिकारहीन पवित्र प्रेम जहाँ उसे नारीत्व के चरम शिखर पर प्रतिष्ठित कर देता है, वहीं उसका असामाजिक, उच्छृंखल प्रेम भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन देनेवाला और जीवन में दुःख और क्लेश का कारण बनता है। प्रेमचन्द ने उक्त दोनों प्रकार की प्रेमिकाओं का चित्रण अपनी कहानियों में किया है। उनकी आदर्श प्रेमिकाएँ 'मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ' के भाव से प्रेम करती हैं। वे अपनी सद्प्रेरणा और एकनिष्ठता से अपने प्रेमी का मार्ग प्रशस्त करती हैं। इनमें से कुछ का प्रेम समाजानुमोदित हो आदर्श दाम्पत्य में परिणत हो जाता है। कुछ का प्रेम जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध बन कालातीत हो जाता है और कुछ विफल हो आत्मघात कर लेती हैं किन्तु उनके प्रेम की एकनिष्ठता अव्याहत रहती है। इनके विपरीत स्वार्थ, स्वेच्छाचार, लिप्सा से प्रेरित हो अनुबंधित प्रेम करनेवाली प्रेमिकाएँ अपना और प्रेमी का जीवन नरक-तुल्य कष्टमय कर देती हैं। लेखक ने इन प्रेमिकाओं के माध्यम से प्रेम को समस्या के रूप में, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक धरातल पर, विश्लेषित किया है।

नारी का पत्नी-रूप सर्वाधिक पवित्र होता है। इस रूप में वह पुरुष के जीवन में आनन्द की विधात्री बनती है। पति-पत्नी का परस्पर सामंजस्य और सहयोग दाम्पत्य जीवन को शान्ति, सुख और समृद्धि से आपूर्ण कर देता है। उनके द्वारा निर्मित आदर्श परिवार आगे चलकर सुदृढ़ समाज, राज्य और राष्ट्र की परिकल्पना को साकार करता है। पत्नी-रूप में भी नारी आदर्श रूप में त्याग, सेवा, सहनशीलता, पवित्रता, सत्प्रेरणा का पुंजीभूत रूप होती है। अशिक्षा, रूढ़िवादिता, अन्धविश्वास, स्वार्थ, स्वेच्छाचार या लोभ-लिप्सा उसके चारित्रिक स्खलन और परिवार के स्तर पर क्लेश का कारण बनते हैं। ननद, जिठानी, भाभी, सौत, सास आदि की भूमिकाओं के साथ उसकी बदलती भंगिमाओं का अंकन भी प्रेमचन्द ने अत्यंत दक्षता से किया है। सौत तथा रखैल के रूप में वे लेखक की विरक्ति और जुगुप्सा का पात्र रही हैं।

मातृत्व नारी की चरम विभूति एवं उपलब्धि है। आदर्श मातृत्व वही है जिसमें असीम वात्सल्य, त्याग, सहिष्णुता के साथ संयम और नियन्त्रण का भाव भी हो। मोहान्धता, रूढ़िग्रस्तता, स्वार्थ तथा लोलुपता मातृत्व को कलंकित करते हैं। विमाता के रूप में लेखक ने ममतामयी और निष्ठुर दोनों प्रकार की माताओं का चित्रण किया है। प्रेमचन्द के अधिकांश पात्र उनके परिवेश में जीते-जागते या सम्पर्कागत, परिचित प्राणी हैं। इसलिए वे यथार्थ, सजीव और मानव हैं। लेखक ने उनका मनोवैज्ञानिक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विश्लेषण भी किया है।

वैधव्य नारी-जीवन का अभिशाप है। प्रेमचन्द ने अपने परिवार तथा समाज में विधवाओं को सती होते या फिर पराश्रित हो अभिशप्त जीवन जीते देखा था। उन्होंने प्रत्येक वर्ग, आयु तथा वृत्ति की विधवाओं के जीवन में प्रवेश कर उनकी समस्याओं के कारणों की खोज की तथा उनके प्रस्तावित निदान भी दिए। उनकी कुछ विधवाएँ यावज्जीवन वैधव्य का निर्वाह करती हैं, कुछ आंशिक रूप में उसे स्वीकृति देती हैं तथा कुछ स्वच्छंद प्रवृत्ति की विधवाएँ उसे पूर्ण अस्वीकृति दे स्वच्छंद जीवन जीती हैं। प्रेमचन्द ने बालविवाह, बहुविवाह, वृद्धविवाह को विधवा-समस्या के मूल कारण माना है। उन्होंने उक्त कारणों के उन्मूलन के साथ ही शिक्षा, स्वावलम्बन तथा समान साम्पत्तिक अधिकार द्वारा उनकी स्थिति को सुधारने का सुझाव भी दिया। बालिका तथा युवती नि:सन्तान विधवाओं के पुनर्विवाह को भी उन्होंने अनिवार्य माना जिससे उन्हें जीने का आधार मिल सके। उनके अनुसार जो संतानवती या वृद्ध विधवाएँ स्वेच्छा से वैधव्य का निर्वाह करती हैं उनके प्रति समाज और पुरुष वर्ग को सदाशय होना होगा।

प्रेमचन्द-युग में वेश्या-समस्या अत्यंत विकट रूप धारण कर चुकी थी। प्रेमचन्द को नारी का अपमान असह्य था। उन्होंने वेश्याओं के प्रति नहीं, वेश्यावृत्ति के प्रति अपनी जुगुप्सा व्यक्त की। पुरुषों की संदिग्ध दृष्टि और उनके द्वारा नारी की अवमानना, पारिवारिक विग्रह एवं अर्थाभाव, परिवेश एवं वातावरण का दबाव और प्रभाव तथा कुछ स्थितियों में स्वयं नारी की वासना और लोलुपता को उन्होंने इस समस्या के लिए उत्तरदायी माना। उन्होंने शिक्षा, स्वावलम्बन तथा विभिन्न आश्रमों की स्थापना द्वारा वेश्याओं को संरक्षण देने का सुझाव भी दिया। स्वेच्छा से वरण करनेवाले व्यक्ति के मिलने पर उन्होंने उनके विवाह अथवा पुनर्विवाह को अधिक उचित माना। प्रेमचन्द वेश्या-सन्तानों को मिलनेवाले सामाजिक तिरस्कार, अवमानना और उपेक्षा से भी परिचित थे। अत: उन्होंने उन्हें जीविकोपयोगी शिक्षा देकर समर्थ बनाना अनिवार्य बताया। युवकों को ऐसी कन्याओं का वरण कर उन्हें आदर्श जीवन का अवसर प्रदान करने की प्रेरणा उन्होंने दी।

प्रेमचन्द नारी के नारीत्व को प्राथमिकता देते थे किन्तु उनके युग के उत्तरार्द्ध तक आते-आते स्त्रियाँ शिक्षित और प्रगतिशील हो रही थीं। वे पर्दा और घर छोड़कर राजनीति, प्रशासन, शिक्षा, चिकित्सा, विधि जैसे क्षेत्रों में भी सक्रिय हो रही थीं। यद्यपि प्रेमचन्द को नारियों की विभिन्न व्यवसायों के प्रति अभिरुचि पसन्द नहीं थी, तथापि उन्होंने सभी रूपों में उनका अंकन कर उनके श्वेत-श्याम पक्षों का तटस्थ विवेचन किया।

प्रेमचन्द की नारी-केन्द्रित कहानियों में अभिव्यक्त उनकी नारी-परिकल्पना का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आधार विशुद्ध सामाजिक है। वह भी सीमित समाज नहीं राष्ट्र तक प्रसृत विशाल, विराट् समाज जिसकी प्रगति और उन्नति के प्रति वे जीवनपर्यन्त प्रतिबद्ध रहे। जीवन का लक्ष्य आनन्द-प्राप्ति है तथा उसे सद्व्यवहार, सदाचरण तथा पवित्रता द्वारा ही उपलब्ध किया जा सकता है। सृष्टि का नियामक अकेला पुरुष नहीं है। नारी ही उसकी पूरक है। अत: प्रेमचन्द ने उसके विभिन्न रूपों के अंकन के साथ-साथ उसके जीवन को अभिशप्त करनेवाली समस्याओं को भी उद्घाटित और विवेचित किया। उनकी दृष्टि मध्यवित्त नारी की ओर अधिक रही है क्योंकि उसका जीवन ही सर्वाधिक संघर्षमय होता है। प्रेमचन्द ने अपनी प्रारंभिक कहानियों में जो आदर्श दृष्टिकोण अपनाया था, वह प्रौढ़ काल तक आते-आते क्रमश: आदर्शोन्मुख यथार्थवाद और फिर यथार्थवाद में परिणत हो गया, किन्तु उनका आस्थावादी दृष्टिकोण सर्वत्र मुखर रहा है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

परिशिष्ट

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची

(क) आधार ग्रंथ

1. कफन और शेष रचनाएँ—प्रेमचन्द (सरस्वती प्रेस, वाराणसी-1, प्रथम संस्करण, 1937)
2. गुप्तधन, भाग 1, 2—प्रेमचन्द (प्रस्तुतकर्ता—अमृतराय, हंस प्रकाशन, प्रयाग, प्रथम संस्करण, 1962)
3. मानसरोवर,भाग 1—प्रेमचन्द (भारतीय ग्रंथ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 1988)
4. मानसरोवर, भाग 2—प्रेमचन्द (भारतीय ग्रंथ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 1988)
5. मानसरोवर, भाग 3—प्रेमचन्द (भारतीय ग्रंथ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 1988)
6. मानसरोवर, भाग 4—प्रेमचन्द (भारतीय ग्रंथ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 1988)
7. मानसरोवर, भाग 5—प्रेमचन्द (भारतीय ग्रंथ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 1988)
8. मानसरोवर, भाग 6—प्रेमचन्द (भारतीय ग्रंथ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 1988)
9. मानसरोवर, भाग 7—प्रेमचन्द (भारतीय ग्रंथ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 1988)
10. मानसरोवर, भाग 8—प्रेमचन्द (भारतीय ग्रंथ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 1988)

(ख) सहायक ग्रंथ

1. कायाकल्प— प्रेमचन्द (सरस्वती प्रेस, वाराणसी-1, 1973)
2. कर्मभूमि— प्रेमचन्द (सरस्वती प्रेस, वाराणसी-1, प्रथम संस्करण, 1932)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

२ गोदान—प्रेमचन्द (सरस्वती प्रेस, प्रयाग, 1979)
4. ग़बन—प्रेमचन्द (सरस्वती प्रेस, वाराणसी-1, प्रथम संस्करण, 1931)
5. निर्मला—प्रेमचन्द (सरस्वती प्रेस, संस्करण 1983)
6. प्रतिज्ञा—प्रेमचन्द (हंस प्रकाशन, प्रयाग)
7. वरदान—प्रेमचन्द (सरस्वती प्रेस, वाराणसी-1, प्रथम संस्करण, 1921)
8. सेवासदन—प्रेमचन्द (सरस्वती प्रेस, वाराणसी-1, 1962)
9. प्रेमचन्द : एक विवेचन—इन्द्रनाथ मदान (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6, तृतीय स स्करण, 1964)
10. प्रेमचन्द : कहानी-शिल्प—डॉ. गौतम सचदेव (यूनाइटेड बुक हाउस, दिल्ली-110006, प्रथम संस्करण, 1982)
11. प्रेमचन्द : साहित्य-संदर्भ—सं. डॉ. लक्ष्मीकांत पाण्डेय (प्रेमचन्द ग्रंथम, रामबाग, कानपुर-12, 1981)
12. प्रेमचन्द : चिन्तन और कला—इन्द्रनाथ मदान (सरस्वती प्रेस, बनारस, प्रथम संस्करण)
13. प्रेमचन्द के नारी पात्र—डॉ. ओम् अवस्थी (नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1962)
14. प्रेमचन्द : जीवन, कला और कृतित्व—हंसराज रहबर (आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट,दिल्ली-6, द्वितीय संस्करण, 1962)
15. प्रेमचन्द—सं. डॉ. सत्येन्द्र (राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली-2, तृतीय संस्करण, 1989)
16. प्रेमचन्द घर में—शिवरानी देवी (सरस्वती प्रेस, वाराणसी-1, 1956)
17. प्रेमचन्द का नारी-चित्रण—डॉ. गीता लाल (हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-6, प्रथम संस्करण,1965)
18. प्रेमचन्द के नारी पात्र—डॉ. भरत सिंह (पुस्तक प्रचार, गांधीनगर, दिल्ली-31, प्रथम संस्करण,1973)
19. हिन्दी उपन्यास में नारी-चित्रण—डॉ. बिन्दु अग्रवाल (राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण,1968)
20. हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास—डॉ. रणवीर रांग्रा (भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली,1961)
21. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास—डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल (द्वितीय संस्करण, 1960)

□□

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE